पुस्तक :
अनुभूति के आलोक में

लेखक
देवेन्द्रमुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

सम्पादक
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

पुस्तक पृष्ठ १६८

प्रथम प्रकाशन :
दीपावली, नवम्बर १९६९

मूल्य :
साधारण संस्करण चार रुपए
प्लास्टिक कवर युक्त चार रुपए, पचास पैसे

प्रकाशक
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
पदराडा, जिला—उदयपुर (राजस्थान)

मुद्रक
रामनारायन मेड़तवाल, श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस,
राजा की मण्डी, आगरा—२

समर्पण

जावन के निर्माण, विकास एव विस्तार में
जिनका आशीर्वाद बीज बनकर रहा,
और जिनका वरदहस्त
मेरे दर्शन, चिंतन, अनुभव
की
दिशा को
सदा प्रोत्साहित करता रहा
उन
श्रद्धेय गुरुदेव के
पुनीत चरणो में

अर्थसहयोगी

हिम्मतमल जयन्तीलाल मेहता
दुकान न० ४, नाईगाव, क्रोसलेन,
शान्तिकुञ्ज बिल्डिग, दादर, बम्बई १४

प्राथमिकी

●

विश्व कवि खलील जिब्रान ने एक बार कहा था कि तुम मुझसे वही बात सुनोगे जो कुछ तुम अपने अन्दर से सुना करते हो। "And you shall hear from us only that whith you hear from yourself"

मैं भी अपने प्रबुद्ध पाठको को वही बात बताना चाहता हूँ, जिसका उन्होने अपने जीवन मे अनेक बार अनुभव किया है। अनुभूति की तीव्रता के अभाव मे भले ही वह अनुभूति अभिव्यक्त न हो सकी हो, किन्तु अनुभूति से तो इन्कार नही किया जा सकता

जीवन का ऐसा कोई भी क्षण नही जिसमे अनुभूति न होती हो। प्रतिपल-प्रतिक्षण नित नये अनुभव होते है पर उन सभी अनुभवो को पकड पाना सहज नही। 'अनुभूति के आलोक मे' उन्ही प्रेरणादायी अनुभवो को संकलित किया गया है, जो विचारो के अंधकार मे भटकते हुए मानवो को प्रशस्त पथ बतला सकें।

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनिजी म० के असीम अनुग्रह का ही सुफल है कि मैं अनुभव, चिंतन, मनन, के क्षेत्र मे आगे बढ सका हूँ, इसमे जो कुछ भी नवीनता, मौलिकता है, वह सब श्रद्धेय गुरुदेव श्री के आशीर्वाद का ही मधुर प्रसाद है।

सुयोग्य सम्पादक कलम कलाधर श्रीचन्द्रजी 'सुराणा' सरस को विस्मृत नही हो सकता जिन्होने पाण्डुलिपि को निहार कर आवश्यक परिमार्जन ही नही किया, अपितु मुद्रण कला की दृष्टि से पुस्तक को सर्वाधिक सुन्दर बनाने का प्रयत्न भी किया।

मैं उन सभी का हृदय से आभार मानता हूँ जिनका मुझे ज्ञात-अज्ञात मे सहयोग मिला है। पाठको ने चिन्तन की चादनी की तरह इसे पसन्द किया तो अगला उपहार भी शीघ्र अर्पित किया जायेगा।

जैन साधना-सदन पूना-२
धन तेरस ७-११-६९

—देवेन्द्र मुनि

प्रकाशकीय

•

चिर प्रतीक्षा के पश्चात् अपने प्रबुद्ध पाठको के कर कमलो मे 'अनुभूति के आलोक मे' सुन्दर एव महत्वपूर्ण ग्रन्थरत्न प्रदान करते हुए हम अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। यह एक ऐसा विशिष्ट ग्रन्थ है, जो आकार प्रकार की दृष्टि से वामन होने पर भी विचारो की दृष्टि मे विराट् है। यदि यह कह दिया जाय तो अतिशयोक्ति नही होगी कि हजार-हजार बृहद्काय ग्रन्थो का सार एक-एक चिन्तन सूत्र मे अभिव्यक्त हुआ है।

जब जीवन रूपी सागर का, चिन्तन रूपी मथनी से मथन किया जाता है तब अनुभव रूपी अमृत प्राप्त होता है। कमनीय कल्पना के गगन मे विहरण करना सरल है, किन्तु अनुभवरूपी अमृत प्राप्त करना कठिन है!

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक हैं—राजस्थानकेसरी प्रसिद्ध वक्ता, गंभीर तत्व-चिंतक श्रद्धेय सद्गुरुवर्य श्रीपुष्करमुनिजी म. के सुयोग्य शिष्य श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री साहित्यरत्न। आप निरन्तर साहित्य-साधना मे सलग्न है। आपके अध्ययन की विशालता, अनुभव चिन्तन मनन की गंभीरता ग्रन्थ की प्रत्येक पक्ति मे मुखरित हो रही है। यदि एक शब्द मे कहा जाय तो पुस्तक स्वयं ही लेखक का परिचय है।

पुस्तक को सर्वाधिक सुन्दर बनाने का श्रेय श्रीयुत श्रीचन्द्रजी सुराणा 'सरस' को है, जिन्होने अत्यन्त आत्मीयता के साथ पुस्तक को सपादन मुद्रण आदि-सभी दृष्टि से निखारने का प्रयास किया।

हम यहाँ पर मधुर प्रवक्ता मगलमुनि जी तथा उनके सुशिष्य सौजन्य मूर्ति भगवती मुनीजी को भूल नही सकते, जिनकी प्रबल प्रेरणा से प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन हेतु अर्थ सहयोग प्राप्त हुआ है। हम उन महानुभावो का हृदय से अभिनन्दन करते हैं जिनका हमे सहकार प्राप्त हुआ है।

मंत्री

श्री तारक गुरु ग्रन्थालय, पदराडा

संपादकीय

•

अनुभूति जीवन का निकटतम सत्य है, और सब से अधिक विश्वसनीय सवेदन भी। विचार, चिंतन, अवलोकन, मनन ये सब बुद्धि के स्पंदन है जो हृदय तक कभी पहुँचते हैं, कभी नही भी! इनका प्रवाह कभी बाहर मे होता है, कभी भीतर मे। बौद्धिक भ्राति, कुण्ठा एव मनोविक्षेप कभी-कभी चिंतन को धूमिल एव विपरीत दिशा मे भी ले जाता है, किन्तु अनुभूति के सम्बन्ध मे इन सब अपवादो की गु जाइश बहुत कम रही है, इसलिए चिन्तन-मनन की अगली श्रेष्ठ सीढी और आत्मा की मवसे निकटतम प्रतिध्वनि अनुभूति को माना गया है। आत्मविद्या ने जिसे निदिध्यासन कहा—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो
मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः

दर्शन, श्रवण और मनन के पश्चात् वही निदिध्यासन—सूक्ष्मचिंतन, आत्म-संवेदन ही अतिम द्वार है, जहाँ आत्मा के साथ अत्यन्त निकटता से सम्पर्क जुडता है। यही निदिध्यासन, हमारी भाषा मे अनुभूति है।

अनुभूतियां प्रत्येक जीव चेतना मे तरगित होती रहती है, स्पष्ट-अस्पष्ट रूप मे! किंतु जब तक अनुभूति को अभिव्यक्ति का माध्यम प्राप्त नही होता, शब्दो का चारु परिवेश उपलब्ध नही होता, तब तक अनुभूति का समाज के लिए कोई लाभ नही। अभिव्यक्त अनुभूति ही विचार जगत की निधि बनती है, और उस अभिव्यक्ति मे जब कला का सपुट लग जाता है तो अनुभूति विचार साहित्य की अमूल्य मणि बनकर चमक उठती है। अनुभूति का सहज स्फुरित आलोक शब्दो की सीमा मे आबद्ध होकर अधिक प्रभास्वर, अधिक तेजस्वी एव चिरस्थायी बन जाता है।

श्री देवेन्द्र मुनिजी, शास्त्री अनुभूति के आलोक मे अपनी चिन्तन की चादनी से भी अधिक निर्मल प्रभास्वर एव विचार सपन्नता के साथ व्यक्त हुए है, यह पुस्तक की पाडुलिपि का पहला पृष्ठ खोलते ही मुझे लगा। यह तो स्पष्ट है कि अनुभूति चिन्तन से भी कुछ गहरी एव कुछ तीक्ष्ण होती है। और जब वे शब्दो की सुनहली फ्रेम मे निबद्ध हो जाती हैं तो और भी अधिक आभा से निखर उठती हैं। मुनि श्री जी के सर्वतोमुखी चिन्तन को इस पुस्तक मे अनुभूति का स्पर्श मिला है, और वह बहुविध धाराओ, विधाओ मे अनेक रूपो मे विभास्वर हुआ है।

मेरा यह सौभाग्य ही है कि चिंतन की चादनी के सपादन का सुअवसर मुझे मिला और अब 'अनुभूति के आलोक मे' का सपादन भी मेरे द्वारा होरहा है। विचारो का आलोक जो कुछ है वह उन्ही का है, हा, शब्दों को हेर-फेर और साज-सँवार कर संपादक बनने का सौभाग्य मुझे मिला, यह मुनिश्री के सहज स्नेह का ही एक निर्मल रूप है। भविष्य की अनेक शुभाशाओ के साथ पुस्तक पाठको के समक्ष प्रस्तुत है—

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

भूमिका

सामान्य मनुष्य केवल द्रष्टा होता है जबकि साहित्यकार स्रष्टा होता है। स्रष्टा होने के लिए भी द्रष्टा होना पडता है, यह सत्य है, किन्तु द्रष्टा की दृष्टि से भी साहित्यकार की कुछ विशेषता होती है जो उसे सामान्य मनुष्य से अलग करती है। वह विशेषता है किसी वस्तु या दृश्य को गहराई से देखना—इतनी गहराई से कि वह वस्तु या दृश्य किसी जीवन-सत्य का उद्घाटक होकर उसके समक्ष अपने को अनावृत कर सके। जिस स्रष्टा का द्रष्टा-पक्ष जितना ही सशक्त होगा वह उतना ही महान् साहित्यकार बनेगा और उसकी जीवन-दृष्टि कोटि-कोटि प्राणियो के अज्ञानान्धकार के आवरण को छिन्न-भिन्न कर उन्हे प्रकाश के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देगी। उसकी मौलिक सूझ और आकर्षक शैली सहज ही जन-मन को मोहित कर लेगी। श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री एक ऐसे ही सफल साहित्य-स्रष्टा हैं।

श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री की पुस्तक 'चिन्तन की चाँदनी' मैंने पढी थी और उसमे आध्यात्मिक विषयो, विशेष रूप से मानव के अन्तर्मन के विश्लेषण से सम्बद्ध भावनाओ और वृत्तियो पर उनके विचार पढने को मिले थे। उनसे मेरा अत्यधिक ज्ञान-वर्द्धन हुआ था और मेरा चिन्तन का क्षितिज भी विस्तृत हुआ था। अब उनकी 'अनुभूति के आलोक मे' पुस्तक मेरे समक्ष आई है। जिसके सम्बन्ध मे कुछ पक्तिया लिख रहा हूँ।

इस पुस्तक पर कुछ कहने से पहले तो मैं यह स्पष्ट करना चाहता हू कि श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री एक विशेष जैन-सप्रदाय के विचारक साधु होने पर भी ऐसे साहित्यकार हैं, जिनका द्रष्टा-पक्ष भी सशक्त है और स्रष्टा-पक्ष भी। आवश्यकता इस बात की है उनकी रचनाओ को निष्पक्ष दृष्टि से देखा-परखा जाए। तभी हम उनकी साधना को सफल बना सकते हैं। मेरा

यह कहना इसलिए सार्थक है कि 'चिन्तन की चांदनी' की भी चर्चा साहित्य क्षेत्र मे कम ही हुई है। अस्तु।

'अनुभूति के आलोक में' पुस्तक मे दर्शन, धर्मसाहित्य, समाज, अर्थशास्त्र आदि विषयो पर मुनि श्री ने बडी ही सरल और हृदयग्राही शैली मे गूढातिगूढ तत्वो का स्पष्टीकरण किया है। हम आध्यात्मिक और लौकिक विषयो की चर्चा के समय जिन पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग करते है, जिन मनोदशाओ का वर्णन करते हैं, जिन भावनाओ का विश्लेषण करते हैं उनके वास्तविक स्वरूप से प्रायः सभी नितान्त अपरिचित रहते हैं। व्युत्पत्तिशास्त्र-विशेषज्ञो की बात मैं नही करता, किन्तु शेष व्यक्तियो मे सुशिक्षित और अशिक्षित सभी को जीवन और जगत की विशिष्ट स्थितियो की व्याख्या मे कठिनाई का अनुभव होता है। फिर व्युत्पत्ति-शास्त्र-विशेषज्ञ जो हैं, उनमे व्याकरण-जन्य शुष्कता ही प्रमुख रहती है जिसके कारण वह दिमागी कसरत करने वालो को ही ग्राह्य हो सकती है। इसके विपरीत श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री जैसे विचारक विभिन्न विषयो की पारिभाषिक शब्दावली को व्यावहारिक जीवन के रस मे वैसे ही डुबाकर प्रस्तुत करते है जिस प्रकार किसी फीके पकवान को चाशनी मे डुबोकर प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिए यह बात सभी जानते है कि धर्म जीवन का आधार है, लेकिन उसका मूल क्या है? वह क्या तत्व है जो जीवन मे धर्म का सचार करता है? यह किसी को पता नही। मुनिश्री कहते हैं—**"धर्मरूप महावृक्ष का बीज है—सरलता! सरलता के बीज को जब प्रज्ञा का जल सींचा जाता है तो जीवनवन मे धर्म का महावृक्ष लहलहाने लगता है।"** इसी प्रकार योद्धा और साधक का अन्तर बताते हुए वे लिखते हैं—**"योद्धा म्यान को नहीं, तलवार को महत्व देता है। साधक देह को नहीं, आत्मा को महत्व देता है।"** भूखे और वैरागी के भेद का स्पष्टीकरण वे इस प्रकार करते है—**बुभुक्षु (भोग का इच्छुक या भूखा) दीक्षा नहीं ले सकता। जो सच्चा मुमुक्षु (मुक्ति का इच्छुक या वैरागी) होता है वही दीक्षा ले सकता**

है।" ज्ञानप्राप्ति का मूलमन्त्र मुनिश्री की दृष्टि मे अहंकार-हीनता है, पर उसे वे यो रखते है—**"बीज जब गिरता है तब अकुर प्रस्फुटित होता है। अहंकार जब मिटता है तब ज्ञान का अंकुर प्रस्फुटित होता है।"**

मुनि श्री प्राकृतिक दृश्यो और पदार्थों के माध्यम से दृष्टान्त-कथाएँ गढते हैं, वैज्ञानिक आविष्कारो को अपने सिद्धान्त-वाक्यो के निर्माण के लिए उपयोग मे लाते हैं, सभी भारतीय दर्शनो के सार्वभौम उपदेशो तथा महापुरुषो के जीवन के चमत्कारिक प्रसगो को नये रूप मे प्रस्तुत करते है और अपने निजी अनुभव के आधार पर दार्शनिक अथवा धार्मिक शव्दावली की मनोहारी व्याख्या करते है। उनकी भाषाशैली मे जहाँ स्वाभाविकता का चन्दन-लेप है वहाँ चिन्तन की चिनगारी का मधुर-ताप भी है। एक-एक शब्द नपा-तुला और अभीष्ट अर्थ से सयुक्त होकर निकलता है। सबसे वड़ी बात है जीवन को भली प्रकार जीने की प्रेरणा प्रदान करना। कोई भी अनुभूति खण्ड ऐसा नही जिसे पढकर पाठक को यह अनुभव न हो कि उसे कुछ नया सीखने को मिला है। जब मैं इस पुस्तक के रचयिता की इस अद्‌भुत कृति के इन अनुभूति खण्डो मे व्यक्त भावो और विचारो की गहराई पर विचार करता हूँ तो मुझे इसके कवि-हृदय की झलक मिलती है। इसका प्रमाण यह है कि ये अनुभूति खण्ड अत्यन्त रोचक है और इन्हे बार-बार पढने को ही मन नही करता, स्मरण रखने और यथासमय उनसे लाभान्वित होने की भावना भी जागृत होती है।

मैं श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री की इस कृति का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और साथ ही सपादक श्री 'सरस' को भी धन्यवाद देता हूँ तथा उनसे विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि हमे ऐसी ही अन्य रचनाएँ भी प्रदान करे। मुझे आशा है, उनकी यह कृति हिन्दी प्रेमी पाठको मे पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त करेगी।

रीडर, हिन्दी-विभाग
कुरुक्षेत्र विश्व विद्यालय,
कुरुक्षेत्र : १-१२-६६ **डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'**

अनुभूति के आलोक में

अनुभूति के आलोक में

धर्म की परिधियां

आत्मा ही परमात्मा है :

परमात्मा का दर्शन करने से पूर्व आत्मा का दर्शन करना अत्यन्त जरूरी है.

जो आत्मा का दर्शन नही कर सकता, वह परमात्मा का दर्शन कैसे करेगा ?

वस्तुत. आत्मा और परमात्मा मे एक आवरण का ही अन्तर है मोह का आवरण जब तक है, आत्मा सुप्त-परमात्मा है. मोह का आवरण हटा कि आत्मा मे ही परमात्मा जागृत हो जाता है.

धर्म का वीज .

धर्मरूप महावृक्ष का वीज है—सरलता ! सरलता के वीज को जब प्रज्ञा का जल सीचा जाता है, तो जीवन वन में धर्म का महावृक्ष लहलहाने लगता है.

पवित्रता का मूल :

पवित्रता का मूल सदाचार है.

सदाचार के अभाव में पवित्रता की आशा करना वैसा ही है, जैसा जल के अभाव मे शीतलता की आशा !

शुद्धि और सिद्धि :

शुद्धि के विना सिद्धि नही मिल सकती जहाँ शुद्धि है वही सिद्धि है

सन्मति के विना सद्‌गति नही हो सकती. जहाॅं सन्मति है, वही सद्‌गति है.

आत्मा को समझे विना परमात्मा को नही समझा जा सकता. जिसने आत्मा को समझा, वही परमात्मा को समझ सकता है.

आत्म-चितन :

जब जब मेरा देह वेदना से व्यथित होता है तव तव मैं सोचता हूँ—"यह वेदना आत्मा को नही, देह को हो रही है देह आत्मा से भिन्न है. वेदना पूर्व कृत कर्म का फल है, और कर्म जड़ है वह आत्मा के अनन्त अनन्त स्वरूप को नष्ट नही कर सकता किंतु मैं आत्म स्वरूप को भूल रहा हूँ, इसीलिए वेदना की अनुभूति से व्याकुलता वढ रही है यदि वेदना के समय भी आनन्द स्वरूप आत्मा की अनुभूति जग जाए तो वेदना की व्यथा मन पर कोई प्रभाव नही दिखा सकेगी."

तीन सत्यो की समान अनुभूति :

यौगिक सत्य है—कि लघिमासिद्धि को प्राप्त करने वाला योगी, जिस प्रकार भूमि पर खडा रहता है, उसी प्रकार भाले की नोक पर खडा हो सकता है. वह योग-प्रक्रिया द्वारा—प्राण विजय प्राप्त कर भार मुक्त बन जाता है.

ऐतिहासिक सत्य है कि—कोशा नर्तकी सरसो के दानो पर नृत्य करती, और दाने इधर उधर बिखरते नही. वह अभ्यास से देह को भार मुक्त बनाने मे कुशल थी.

वैज्ञानिक सत्य है—जो रूसी वैज्ञानिक जियोलकोव्स्की ने बताया है—"यदि मैं पृथ्वी पर सुई की नोक पर खडा हो जाऊँ तो मेरा पैर सुई के अदर घुस जाएगा, लेकिन यदि ऐसा अतरिक्ष मे हो, तो

मेरा पैर सुई पर इस तरह खडा रहेगा मानो मै पृथ्वी पर खडा हू."

आत्मा और देह :

मैंने देखा—विजली के तार का महत्व इसलिए है कि उसके भीतर शक्तिशालिनी विद्युत् प्रवाहित होती है.

मैंने अनुभव किया,—मानव देह का महत्त्व इसलिए है कि उसके भीतर ज्योतिर्मय आत्मा निवास करता है

—बिजली के बिना तार का क्या महत्व ?

—आत्मा के बिना देह का क्या महत्त्व ?

साधना का मार्ग .

एक दिन मिट्टी ने घडे से कहा—"भैया ! जो जल हमे वहाकर ले जाता है, उसे तुम अपने भीतर रोककर बैठें हो, यह सिद्धि कैसे प्राप्त की तुमने ?"

घडे ने उत्तर दिया वहन ! मैंने कुभकार के हाथों अपना सर्वस्व सौंप दिया, उसने मुझे पीटा, थपथपाया, अग्नि मे तपाया और उसके वाद कही जाकर जल धारण करने का वरदान दिया."

मिट्टी ने घवराते हुए कहा—"उफ ! वडा कठिन मार्ग है कोई सीधा-सा मार्ग वताओ भैया !"

घड़े ने गभीरता के साथ कहा—"बहन ! सीधे मार्ग पर तो जा ही रही हो, साधना का मार्ग तो हमेशा ही कठिन होता है ।"

ज्ञान का झरना

सद्गुरु रूप हिमालय से ज्ञान का निर्मल झरना वह रहा है बुद्धि का पात्र लिए जिज्ञासुओ की लम्बी पक्ति किनारे पर खड़ी है. जिसका

पात्र जितना वडा है, वह उतना ही जल प्राप्त कर सकता है

साधक की गति :

मैंने चीटी से पूछा—तुम इतनी धीरे-धीरे चल रही हो, अपने स्थान तक कव पहुच सकोगी ?

चीटी ने कहा—मेरी गति धीमी जरूर है, पर विना रुके चलती रहती हूँ, अपना स्थान मिल ही जायेगा.

मैंने वदर से पूछा—तुम एक पेड से दूसरे पेड पर छलागे मारते हो, और फिर रुक जाते हो, इस प्रकार अपने घर तक कव पहुच पाओगे ? वदर ने कहा—रुकना भी विश्राम है, नई स्फूर्ति पाकर फिर आगे वढता हूं, और घर को नजदीक किए जा रहा हूँ.

पक्षी से मैंने पूछा—तुम विना रुके अनन्त गगन में सपाटे के साथ उड़े जा रहे हो, कही बीच ही मे थक गये तो, मंजिल कैसे मिलेगी ? पक्षी नें कहा—जव चल पडे तो वीच मे रुकना क्या ? चलने वाले को मजिल सामने दिखाई देती है

मैने सोचा—साधक भी इन तीन गतियो से चल रहे हैं एक वे है जो साधना के स्तर पर धीमे-धीमे वढ रहे हैं एक वे हैं जो एक-एक स्तर पर रुक रुक कर वढ रहे हैं, और एक वे हैं—जो वस वढे ही जा रहे हैं, रुकने का कही नाम नही.

स्व-और सर्व .

मन मे जव तक 'स्व' (मैं) है तब तक दृष्टि 'सर्व' (विराट के दर्शन कर नही सकती

जिसने 'स्व' को समाप्त किया, वह सर्व बन गया

धन और धर्म

धन के अभाव मे मनुष्य सुख-पूर्वक जी सकता है, किन्तु धर्म के अभाव मे नही

धन अधिक से अधिक अन्न के समान है, जब कि धर्म तो प्राण-वायु के तुल्य है.

जिस जीवन मे धन है, किन्तु धर्म नही है, वह सबसे बडा दरिद्र जीवन है.

धर्म है तो दरिद्रता कष्ट नही दे सकती. इसलिए धन को नही, किन्तु धर्म को जीवन का आधार बनाकर चलो—तुम कभी दरिद्र नही हो सकोगे

धर्म, चारपाई :

धर्म तो चारपाई के समान है, इस पर कोई भी सोए उसे आराम मिलेगा

जिस चारपाई के चारो पाये ठीक है, उस पर कोई भी मनुष्य सुख-पूर्वक सो सकता है

जिस धर्म के - क्षमा, निस्पृहता, सरलता एव विनम्रता— रूप चार पाये सही सलामत है, उस धर्म का आचरण करके कोई भी सुखी हो सकता है.

सत्य का रूप .

शिष्य ने गुरु से पूछा—"सत्य क्या है ? उसकी सीमा क्या है ?"

गुरु ने एक विशाल वृक्ष की ओर सकेत करके कहा–"यह क्या है ?"

"वृक्ष !"

"इस पर कितनी पत्तियाँ है ?"

"अगणित ! असख्य !"

गुरु ने अनन्त आकाश की ओर सकेत करके कहा—"यह क्या देख रहे हो ?'

"आकाश !"

"इसका कही ओर-छोर दिखाई देता है ?"

"नही !"

गुरु ने समाधान की भाषा मे कहा–"इसी प्रकार सत्य के रूप असख्य-अनन्त, और असीम है. वह देखा जा सकता है, समझा जा सकता है, किन्तु उसकी सीमा का पता किसी को नही चला"

वेग. सवेग :

जैन धर्म ने वेग को रोकने की नही, मोडने की शिक्षा दी है इसलिए वहा 'निर्वेग' नही, किन्तु 'सवेग' शब्द का महत्व है

वेग को सही मार्ग पर मोड देने से वह जीवन का श्रेय-साधक बन जाता है जिस प्रकार कि जल के वेग को सही दिशा मे मोड देने से भूमि की समृद्धि का स्रोत बन जाता है

उपदेश सप्लाई .

तथागत बुद्ध ने एक वार कहा—'जो दूसरो को उपदेश देकर स्वयं उस पर आचरण नही करता, वह उस कडछी की तरह है, जो सदा दाल मे रहकर भी उसका स्वाद नही पहचान पाती"

मैने देखा है—हजारो गज कपडा नाप कर गज आज भी नगा है, लाखो मन अन्न तोल कर तराजू आज भी खाली पेट है और हजारो

तोला सोना कस कर भी कसौटी आज भी काली है

मैने अनुभव किया है—व्यापारी एजेन्सियो की तरह आज के साधक भी उपदेश सप्लाई का धंधा करने लगे है. इसीलिए वड़े-वडे उपदेशो का उनके जीवन पर कोई असर नही दिखलाई देता.

एकात कव ?

निर्जन (एकात) मे रहना उसी के लिए हितकर है, जिसके मन मे ज्ञान का सज्जन बैठा है. अज्ञानी को अकेला देखकर विकारो के दुर्जन उसी प्रकार घेर लेते हैं, जिस प्रकार हरिण को अकेला देख कर सियार और कुत्ते घेर लेते है.

भोग और योग .

जहाँ भोग है—वहाँ कामना है, दासता है, वधन है, भय और पीडा है जहाँ योग है—वहाँ निस्पृहता है, स्वामित्व है स्वतत्रता है, अभय और आनद है

भोगासक्त सम्राट भी अपने को दलदल मे फसे हुए हाथी की तरह सर्वथा असमर्थ, दीन एव भयग्रस्त अनुभव करता है.

योग साधना में रत एक अकिंचन स्वयं को पवन की तरह उन्मुक्त, एव अभय अनुभव करता है.

त्राण नही मिल मकना

संखिया खाकर सरोवर में प्रवेश करने से शांति नही मिल सकती !

शिर काट कर अमृत पीने से नवजीवन नही मिल सकता

पाप करके प्रभु शरण मे जाने से नरक से त्राण नही मिल सकता.

ज्ञान और दया .

जीवन मे ज्ञान और दया का वही क्रम है, जो उपवन में वृक्ष और फल का है

फल की इच्छा रखने वाले के लिए वृक्ष लगाना बहुत जरूरी है, दया और सदाचार का विकास चाहने वाले के लिए ज्ञान प्राप्त करना बहुत जरूरी है.

यदि वृक्ष हराभरा है, तो समय-समय पर फल भी आते रहेगे.

यदि ज्ञान निर्मल है, तो दया व सदाचार निरन्तर विकास पाते रहेगे.

भक्त के चार रूप :

जो चिन्ता, एव सकट से उत्पीडित होकर भगवान के द्वार पर रक्षा की पुकार लगाता है—वह 'आर्त' भक्त है.

जो संसार की कामना एव लालसा से प्रेरित होकर उनकी पूर्ति की प्रार्थना करता है, वह 'अर्थार्थी' भक्त है.

जो भगवत् स्वरूप का साक्षात्कार करने के लिए भक्ति की लौ जलाकर भगवान को खोज रहा है, वह 'जिज्ञासु' भक्त है.

जो आत्मा परमात्मा मे वास्तविक अभेद मानकर, 'निज स्वरूप' मे ही 'जिन स्वरूप' का दर्शन करता है, वह 'ज्ञानी' भक्त है.

दीनबंधु :

कहते है कि भगवान का नाम "दीनदयालु, दीनबंधु है, उसे दीनता प्रिय है"

किन्तु मैं देखता हूँ, जो भी अपने को बडा भक्त, और धर्मात्मा समझता है, वह आज अपनी भक्ति और धर्म के नाम सर अहकार से गदराए खडा है अभिमान से उसका मन इतना फूल गया है कि—दीनता, नम्रता और विनय को एक तिल धरने की भी जगह वहाॅ नही है. फिर दीनदयालु कैसे वहाँ आ पायेगा ?

जो दीन से घृणा और नफरत करता है, वह 'दीनबधु' से प्रेम कैसे कर सकेगा ?

क्या नफरत गुनाह नही है ?

मुसलमानो के धर्म ग्रन्थ कुरानशरीफ मे एक स्थान पर लिखा है—"हे मुहम्मद ! दुनियाँ को विश्वास दिलादे कि अल्लाह की इस दुनिया को कोई न सताए."— '**ला तो अजे बोर वला कुल्ला हे.**"

मेरे मन मे प्रश्न उठा- क्या यह समूची सृष्टि ही अल ाह की सतान है,या एक जाति विशेष ? जब सब एक ही अल्लाह के बेटे हैं, तो मुसलमान हिन्दू से नफरत क्यो करता है ? क्या अपने भाई को सताना और उससे नफरत करना उस अल्लाह के सामने गुनाह नही है जिसने कहा कि—"तुम सब मेरी सतान हो, कोई किसी को न सताओ "

ईश्वर का वास कहाँ ?

एक अनादि कालीन प्रश्न है—'ईश्वर कहाँ है ?' और अनादि काल से ही इसका उत्तर दिया जा रहा है—"ईश्वर तुम्हारे ही भीतर है. यदि वह तुम्हारे भीतर नही है, तो फिर कही नही है."

किन्तु आश्चर्य है, न प्रश्न अब तक समाहित हुआ है, और न यह उत्तर बदला है.

उतरता है तो इस ढालू मार्ग पर पग-पग पर फिसलने और गिरने का खतरा बना रहता है. थोडा-सा भी इधर-उधर चूक गये कि—बस, उन पातालमुखी खाइयो मे जा गिरे.

साधक को पग-पग पर सावधान होकर चलना पड़ता है.

तप की शक्ति

तप की शक्ति अजेय है, उसका प्रभाव अतर्कणीय है. धर्मग्रन्थो की गाथाए कहती है कि—जब-जब ससार मे तपस्या का तेज प्रदीप्त हुआ है, तो बडे-बडे सम्राटो के मस्तक विनत हो गए और स्वर्ग मे आसीन देवराज इन्द्र के भी सिंहासन डोल उठे.

इन गाथाओ का तात्पर्य यह है कि जब आत्म-शक्ति जागृत होती है तो भौतिक शक्तिया अपने आप उसके चरणो मे समर्पित हो जाती है.

साधक का जीवन पुष्प

मैने देखा—फूल सुदरी की वेणी मे गुथे जाने पर भी सुगध देता है, और किसी गधी की भट्टी मे इतर के लिए जलाए जाने पर भी !

मैंने अनुभव किया—साधक का जीवन भी पुष्प के समान है. जो सन्मान और प्रशसा प्राप्त करके भी महकता है, और निन्दा एव कष्ट की दारुण वेला मे भी !

नये-पुराने

यदि मृत्यु न होती, तो जन्म को अवकाश ही कहाँ होता ?

यदि वृक्ष के पुराने पत्ते गिर नही जाते, तो नये पत्तो को मुस्कराने का अवसर ही कहाँ मिलता ?

यदि गाड़ी मे चलने वाले यात्री अपने-अपने स्टेशन पर उतर नही जाते, तो नये यात्रियो को चढ़ने का स्थान ही कहाँ मिलता ?

यदि तन पर लादे हुए पुराने कपड़े कभी फटते ही नही, तो नये कपड़ो की आवश्यकता ही क्यो होती ?

यदि जन्म लेने वाला प्राणी मृत्यु के मुख मे नही जाता, तो फिर नये जन्म की सभावना ही कहाँ होती ?

फिर मृत्यु से भय क्यो ?

शासित और शासक :

मैंने देखा—शस्त्रधारी सैनिक राष्ट्रपति की रक्षा के लिए भी साथ चलता है, और अपराधी की रक्षा के लिए भी ! किन्तु अन्तर इतना ही है—एक जगह शासित होकर चलता है, दूससी जगह शासक वनकर !

मैंने अनुभव किया—धन, वैभव तत्वज्ञानी पुरुष के पास भी रहता है, और वासना वे कीड़े अज्ञानियो के पास भी ! किन्तु एक जगह वह शासित होकर चलता है, और दूसरी जगह शासन करता हुआ

भगवान ही क्या ?

दीन की पुकार सुनकर जिस बलवान का मन नही पिघले, वह वलवान ही क्या ?

दरिद्र की पुकार सुनकर जिस धनवान का दिल नही पसीजे, वह धनवान ही क्या ?

भक्त की पुकार सुनकर जिस भगवान का हृदय द्रवित नही हो, वह भगवान ही क्या ?

मन ईश्वर का मन्दिर है :

मन ईश्वर का मंदिर है, इस मे ज्ञान का दीपक जला कर ईश्वर के दर्शन किये जा सकते हैं

सतो और विचारको ने मन को ईश्वर का मदिर तो माना है, किन्तु जव से उन्होने वाहर में ईंट-पत्थर के मंदिर में ईश्वर को विठाने की बात सोची, तव से ईश्वर मन-मंदिर में भी आना भूल गया.

आत्म-तेज

सूर्य की विखरी हुई किरणो से अग्नि प्रज्वलित नही हो सकती, किन्तु यदि उन्हे यत्र आदि मे केन्द्रित की जाए तो उससे रसोई वनाई जा सकती है

जल की बिखरी हुई धाराए विद्युत् उत्पन्न नही कर सकती, किन्तु यदि उनके प्रवाह को बाध आदि के द्वारा रोककर केन्द्रित किया जाए तो लाखो किलोवाट विजली प्राप्त हो सकती है

वाष्प की बिखरी हुई गति मे शक्ति जागृत नही हो सकती, किन्तु यदि उसे विशेष साधनो से एकत्रित किया जाए तो जलयान एव अग्नियान चल सकते है.

मन की बिखरी हुई शक्ति मे आत्म-ज्योति प्रकट नही हो सकती, किन्तु यदि उसे ध्यान आदि के द्वारा केन्द्रित की जाए तो आत्मशक्ति का अद्भुत तेज प्रकट हो सकता है

परम ध्येय :

कल कल करती हुई नदियो से मैंने पूछा—तुम पहाडो, जगलो और नगरो के वीच से निरन्तर वह रही हो, आखिर तुम्हारा लक्ष्य क्या है ?

नदी ने उत्तर दिया—"लक्ष्य-वक्ष्य मैं नही जानती, बस यही जानती हूं कि जब तक बहती हूँ, धरती की प्यास बुझाती रहूँ, और अन्त मे महासागर मे जाकर अपना अस्तित्त्व विलीन कर दू"

निरपेक्ष भाव से विचरते हुए संत से मैंने पूछा—'आप गांव-गांव, गली-कूचे में उपदेश सुनाते हुए घूम रहे है, आखिर ध्येय क्या है ?

सत ने उत्तर दिया—"ध्येय-वेय मैं क्या जानू ? बस इतना भर जानता हू कि जब तक जीता हू, विश्व-कल्याण के लिए कुछ करता रहू, और अन्त मे उस परम ज्योति स्वरूप मे अपने स्थूल व्यक्तित्व को विलीन कर दू ?"

अनासक्ति का आक्सीजन :

समुद्र की अतल गहराई में यात्रा करने वाला मनुष्य अपने साथ प्राणवायु (आक्सीजन) लेकर चलता है. जब तक प्राणवायु उसके पास है पानी का अपार दवाव उसका दम नही तोड़ सकता

जीवन समुद्र की गहराई मे उतरना है तो अनासक्ति का प्राणवायु अपने साथ लेकर चलना होगा. फिर माया के असीम प्रलोभनों के भार से भी हमारा दम नही घुटेगा.

साधना का मार्ग : चढाव या उतार ?

लोग कहते है "साधना का मार्ग पर्वत की चढाई है, समर्थ व्यक्ति ही उस पर चढ़ सकता है."

मेरा अनुभव है कि—साधना का मार्ग चढाई नही, उतार है चढाई में सिर्फ शक्ति की जरूरत है, किन्तु उतार में अत्यन्त सावधानी की ! जव साधक मन के अहकार, स्वार्थ एव प्रलोभनो की चोटियो से नीचे

भक्त-सखा है, याचक नही :

भक्ति का अर्थ याचना नही, उपासना है. जो भक्त भगवान के सामने याचना करता है, वह भक्त नही, भिखारी है. भिखारी को राजमहल में प्रवेश करने का कोई अधिकार नही. फिर उस याचक भक्त को भगवान के दरबार मे पहुँचने का क्या हक है ?

भक्त-भगवान को 'सखा' मानता है, और उससे भी आगे वढ़कर 'आत्म स्वरूप' अनुभव करता है. वह भगवान को बाहर नही, अपने भीतर ही पाता है, इसलिए उसे कही जाने की और मागने की जरूरत नही जो कुछ चाहता है, वह सम्राट् के मेहमान की तरह अपने आप सामने आ जाता है.

गुरु

गुरु शिष्य को ज्ञान देता नही, जगाता है. देने का अर्थ है—बाहर से उठाकर भीतर मे डालना, और जगाने का अर्थ है—भीतर मे रही हुई शक्ति को प्रबुद्ध करना.

ज्ञान शक्ति, मनुष्य के हृदय मे सुप्त पडी है, मूर्च्छित हो रही है, गुरु उसे शास्त्र की नोक से गुदगुदा कर जागृत करता है, प्रवचन का अमृत छीट कर उसे चैतन्य बना देता है.

म्यान और तलवार :

म्यान, केवल तलवार की सुरक्षा के लिए है, वह शत्रुओ से रक्षा नही कर सकती.

देह, केवल आत्मा की प्रवृत्तियो का निमित्त है, वह विकारो पर विजय प्राप्त नही कर सकता.

योद्धा, म्यान को नही, तलवार को महत्व देता है
साधक, देह को नही, आत्मा को देखता है.

तृष्णा और संतोष

एक दिन अपने-अपने बडप्पन के प्रश्न को लेकर तृष्णा और संतोष में विवाद हो गया विवाद आत्मा के सामने आया. आत्मा ने कहा—"तुम दोनों अपनी सफाई दो"

तृष्णा ने कहा—"मैं बडे-बड़े सम्राटो और चक्रवर्तियो को भी अपना दास बनाए रखती हूँ"

संतोष ने कहा—"मैं तो एक दीन-गरीब के पास भी जब जाता हूँ तो उसे ससार का स्वामी बना देता हू."

आत्मा ने निर्णय दिया—"दूसरो को दास बनाने वाला वडा नही होता, किन्तु दासता से मुक्ति दिलाने वाला बड़ा होता है"

मन का स्वामी .

यदि कोई अपने सेवक को स्वामी मानकर उसकी आज्ञा में चलने का प्रयत्न करे तो क्या वह सुखी रह सकता है ? नही।

फिर क्या यह आश्चर्य नही है, आत्मारूप स्वामी मनरूप सेवक के अनुशासन मे चलता हुआ सुख प्राप्त करने की कल्पना कर रहा है ? मन को स्वामी मानकर चलने मे सुख कदापि नही, सुख है मन का स्वामी बनकर चलने मे

आत्म-समृद्धि

जो अतीत की अनुभूतियो से वर्तमान का परिष्कार करता है, और

भविष्य की कल्पनाओ से वर्तमान का शृंगार करता है—उसका वर्तमान सदा यशस्वी होता है.

जो दूसरो की अच्छाइयो को सुनकर उन्हे स्वीकार करने को तैयार रहता है, और अपनी बुराइयो का अनुभव कर उनका परिहार करने मे सकोच नही करता, उसका जीवन निरन्तर आत्म-समृद्धि की ओर वढता है.

नि शल्यता :

जिस प्रकार पहलवान अपनी गुप्त चोट मालिश करने वाले को वता देता है, जिस प्रकार रोगी अपना गुप्ततम रोग चिकित्सक के सामने प्रकट कर देता है, उसी प्रकार आत्मा को स्वस्थ एव पुष्ट वनाने के लिए अपने मानस के समस्त पाप प्रभु या गुरु के समक्ष सरल भाव से व्यक्त कर देना चाहिए

गुरु शल्य-चिकित्सक की भाँति मन की गाठो की चिकित्सा करके हृदय को नि शल्य बनाने का प्रयत्न करते है.
मन की निःशल्यता साधक जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि है.

शासन की अवज्ञा ·

अच्छा शासक कभी भी यह बर्दाश्त नही कर सकता, कि सेवक एव कर्मचारी उसकी आज्ञाओ की अवहेलना करके उसका खुल्लमखुल्ला उपहास करे

किन्तु मैं देख कर चकित हूं कि हमारा आत्मा जो स्वय शासक है, वह इन्द्रियाँ रूप कर्मचारियो द्वारा अपने अनुशासन की खुली अवज्ञा देखकर भी चुप बैठा है !

आत्मानुशासन में आस्था रखने वाले व्यक्ति के लिए क्या यह असह्य नही है ?

विराट्ता मे सुख है :

मैंने देखा—दीपक को सदा हवा के झोको का भय बना रहता है. आंधी और तूफान छोटे-छोटे वृक्षों को धराशायी बना देता है और ग्रीष्म का आतप क्षुद्र सरोवरो का रस शोषण कर सुखा देता है

मैंने देखा—प्रलय के झोको से भी सूर्य चन्द्र का प्रकाश कभी लुप्त नही हो सका, भयकर तूफानो मे महावृक्ष सिर उठाए खड़ा रहता है और भयकर दुष्काल एव घोर आतक मे भी महासागर का हृदय कभी शुष्क नही बना.

मैंने अनुभव किया—विराट्ता मे सुख है, रस है

क्षुद्रता मे कष्ट है, नीरसता है.

उपनिषद् के शब्दो में—**यो वै भूमा तत् सुखं, नाल्पे सुखमस्ति**—जो विशाल एव व्यापक है वही आनन्द ह, वही सुख है. क्षुद्र में कोई आनन्द नही.

तत्व का मोती ·

मेरे मित्र ! मोती खोजना चाहते हो, तो गॉव की गदी तलैया मे डुबकियाँ मत लगाओ ! आओ, साहस के साथ महासागर मे गोता लगाओ, मोती मिलेगे, अवश्य मिलेगे !

मेरे साधक ! 'तत्व' का मोती पाना चाहते हो तो तर्क-वितर्क की क्षुद्र तलैया मे डुबकी मत लगाओ, आओ श्रद्धा के साथ चिन्तन के महासागर मे गोता लगाओ, तत्व का मोती मिलेगा, अवश्य मिलेगा

आज का दिन .

आज का दिन जीवन का श्रेष्ठ दिन है.

महान् कार्य करने के लिए जो 'आज' की उपेक्षा करके कल की प्रतीक्षा करता है, वह सबसे बडा मूर्ख है. आज तुम्हारे हाथ मे है, और कल का कोई पता नही। हाथ की चीज को छोडकर, बे-पता की प्रतीक्षा करने वाला जीवन मे कभी कोई महान् कार्य नही कर पाता !

आज की उपेक्षा का अर्थ है—जीवन की विराट्ता की उपेक्षा। जीवन की श्रेष्ठता का अपव्यय !

सेवा कठिन है

गाँधी जी से पूछा गया—"जीवन मे कठिन क्या है ?" गाँधी जी ने गभीर होकर उत्तर दिया—"सेवा करना सबसे कठिन है. बडे-बड़े ग्रन्थ लिखना, भाषण देना, जेल जाना और यातनाए सहना उतना कठिन नही है, जितना नि स्वार्थ भाव से जनता जनार्दन की सेवा करना."

वस्तुत सेवा-व्रत मानव जीवन का श्रेष्ठतम कर्म है. सेवा मे शुचिता, सरलता और सहृदयता की पूजा होती है यही सर्वश्रेष्ठ पूजा है

साधक का ध्येय :

दिशासूचक यत्र कही भी पडा रहे, उसका झुकाव सदा ध्रुव की ओर रहेगा

नदी कही भी वहती रहे, उसका लक्ष्य समुद्र की ओर होगा. कुमुद कही भी खिले, उसका मुख चन्द्रमा की ओर होगा आत्म-साधक कही भी रहे, उसका ध्येय आत्मा की ओर होगा

साधक नाव के समान :

नाव जल मे रहती है, वही उसकी गति का आधार है किन्तु जव चलती है तो लहरो को काटने में वह कभी सकुचाती नही

साधक संसार मे रहता है, किन्तु जव संसार (वासनाएं) साधना मे विघ्न उपस्थित करता है तो उससे सघर्ष करने में भी वह कभी पीछे नही हटता

साध्य और साधना .

साधन का महत्व साध्य की प्राप्ति तक है. साध्य प्राप्त हो जाने पर साधन को पकड़ कर रखने की आवश्यकता नही

सीढी का महत्व महल में पहुचने तक है. महल मे पहुचने पर भी सीढ़ी पर खडा रहना आवश्यक नही है.

वाहन का महत्व मजिल तक पहुंचने मे है. मजिल आ जाने के बाद वाहन मे बैठे रहने की कोई आवश्यकता नही है.

अच्छा वनने के लिए :

अच्छा खाने के लिए नही, किन्तु अच्छा पचाने के लिए व्यायाम किया जाता है.
अच्छा सुनाने के लिए नही, किन्तु अच्छा जानने के लिए अध्ययन किया जाता है.
अच्छा दिखाने के लिए नही, किन्तु अच्छा बनने के लिए सदाचार का पालन किया जाता है.

मात्रा का ज्ञान :

'मात्रज्ञ' होना सवसे बड़ी विशेषता है. जिसे भोजन की 'मात्रा' का

ज्ञान नही, उसके लिए पौष्टिक भोजन भी रोग का कारण बन जाता है

जिसे पीने की मात्रा का ज्ञान नही, उसके लिए अमृततुल्य पेय भी विष बन जाता है

जिसे औषधि की मात्रा का ज्ञान नही, उसके लिए संजीवनी औषधि भी मृत्युदायी सिद्ध हो सकती है

जिसे साधना की आचार मात्रा का ज्ञान नही, उसके लिए मुक्ति की साधना भी आत्म विराधना का हेतु बन जाती है.

जिसे तप की विधि=मात्रा का ज्ञान नही, उसके लिए आत्म-शोधक तप भी 'ताप' बन जाता है. इसलिए भगवान महावीर ने कहा— साधक मायन्नए—मात्रज्ञ बने. प्रत्येक क्रिया की मात्रा का परिज्ञान करे और फिर आचरण.

साधना के नौ अग :

जैन साधना पद्धति मे साधना की नौ विधिया बतलाई गई है प्रत्येक विधि मे सम्यक्गति करने से ही साधना मे समग्रता एव परिपूर्णता आ सकती है.

१ कायोत्सर्ग—देह पर से ममत्व हटाकर उसे निश्चल स्थिर बनाने का अभ्यास.

२ प्रायश्चित्त—मन के गुप्त या व्यक्त विचारो, आवेगो का प्रकटीकरण, परिवर्तन एव परिमार्जन । इससे पहले आत्म-निरीक्षण द्वारा अपने आवेगो की पहचान होती है, पश्चात् उनका प्रायश्चित्त !

३ भावना—मैत्री, प्रमोद आदि पवित्र भावनाओ से मन को पवित्र एवं प्रसन्न रखने का अभ्यास.

० ध्यान—किसी पवित्र ध्येय पर चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास. इससे आत्मवल स्फूर्त होता है.

५ स्वाध्याय—सद्‌ग्रन्थो एव सद्‌विचारो के चिंतन—मनन में तन्मयता का अभ्यास. इससे मन में आनद की मधुर अनुभूतियां जगती है.

६ प्रतिसलीनता—इन्द्रियो को वाहर से हटाकर अन्तर की ओर उन्मुख वनाने का अभ्यास.

७ योगासन—दैहिक स्थिरता एव स्वस्थता को वनाए रखने के लिए आसन आदि का अभ्यास.

८ सुखमय सामुदायिक जीवन—विनय, सेवा, प्रीति आदि के अभ्यास से सवत्र सुख एवं स्नेह की अनुभूति करना.

९ आहार सयम—भोजन आदि खाद्य पेय का नियमित एव मर्यादा के अनुसार संतुलित सेवन.

वाहर · भीतर :

जिसके विजय-ध्वज दिगंतो तक फहराने लगे हैं, वह मनुष्य अपनी मनोभूमि पर आज तक परास्त होता रहा है.

जिसके विज्ञान चरणो का पदचाप चद्रलोक तक सुनाई देने लगा है, वह मनुष्य अपनी आत्मगति के सम्वन्ध में आज भी सज्ञाशून्य-सा पडा है.

मैंने देखा—मनुष्य वाहर मे जितना वढता जा रहा है,भीतर मे उतना ही सिकुडता जा रहा है.

आग्रह : भीतर की साकल .

जो व्यक्ति अपने कमरे का दरवाजा बद कर भीतर की सांकल लगा कर अपने आप बद हो गया है, उसको बाहर वाला कौन मुक्त कर सकता है ?

द्वार खटखटाने पर भी जव तक भीतर की सांकल नही खुलेगी, द्वार उघड नही सकेगा

यही हाल उस व्यक्ति का है जो अपनी बुद्धि के दरवाजे बंद कर आग्रह की सांकल लगाकर अपने ही विचारो मे आप बदी बन गया है उस आग्रही को कौन बुद्धिमान समझा सकता है ? उसके विचारो को चाहे जितना झकझोरिये, किंतु जब तक पूर्वआग्रह की साकल नही खुलेगी, चितन का द्वार उन्मुक्त नही हो सकेगा.

श्रद्धा और ईडा :

हृदय—अनत आस्था का प्रतीक है.

मस्तिष्क- असख्य तर्क-वितर्क का प्रतीक है

मस्तिष्क मे समुद्र की भाति प्रश्नो की असख्य-असख्य तरगे प्रतिक्षण मचलती रहती है.

किंतु हृदय के आकाश मे आस्था का अवगाहन पाकर वे दूसरे क्षण विलीन हो जाती है

महाकवि प्रसाद ने श्रद्धा और ईडा के साथ मनु को उपस्थित करके मानव-हृदय की अभिव्यक्ति की है. श्रद्धा का साहचर्य मनु के विकास एवं ऊर्ध्वगमन का निमित्त बनता है, किंतु जव ईडा का प्रभाव उस-पर चढ जाता है तो उसका जीवन अशात एव कु ठाग्रस्त हो जाता है. श्रद्धा हृदय है ईडा मस्तिष्क, तर्क-वितर्क ।

केन्द्रित होकर .. :

मैंने देखा—छोटे-छोटे तृण जो बिखर कर कचरा बनते है, वे ही संगठित होकर कचरा साफ करने वाली बुहारी बन जाती है.

मैंने देखा—छोटे-छोटे पत्थर जो ठोकर मार कर गिराने का काम करते है, वे ही व्यवस्थित होकर ऊपर चढने के लिए सीढिया बन जाते हैं.

मैंने अनुभव किया—मन की बिखरी हुई अलग-अलग वृत्तिया जो उसे उद्भ्रांत बनाती है, वे ही केन्द्रित होकर शक्ति का अक्षय स्रोत बन जाती है.

समाधि के लिए :

आत्मभाव मे रमण करना समाधि है, ओर बहिर्भाव मे रमण करना उपाधि.

जिसे समाधि प्राप्त करना है, उसे बहिर्भाव से हटकर आत्मभाव की ओर आना होगा.

आत्मभाव की स्मृति

'स्वाध्याय, जप, ध्यान आदि का उद्देश्य क्या है ?'—शिष्य ने पूछा.

'विस्मृति और स्मृति'—गुरु ने उत्तर दिया

"सासारिक विपयो की विस्मृति, अहंकार, श्लाघा, ममत्व आदि भावो को भूलना और मैत्री, प्रमोद, करुणा आदि भावो की स्मृति को दृढ बनाना यही स्वाध्याय, ध्यान आदि का लक्ष्य है"-गुरु ने स्पष्टीकरण किया—

रूप और शील :

'शील' का महत्व 'रूप' से वढकर है

रूप का सम्मोहन क्षणिक है—शील का चिरस्थायी.

रूप चले जाने पर भी शील का सम्मोहन बना रहता है, किंतु शील नष्ट होने पर रूप निस्तेज और महत्वहीन हो जाता है.

इसीलिए रूप मे केवल आकर्षण है, और शील मे आकर्षण के साथ श्रद्धा भी !

मनुष्य की कसौटी .

एक कहावत है—सोने की कसौटी पत्थर है, और मनुष्य की कसौटी सोना है.

सोना से मतलब है—धन ! धन जब मनुष्य के पास आता है तो सामान्यत एक विचित्र नशा उस पर छा जाता है उसके देखने, सुनने, बोलने और खाने-पीने के तरीके बदल जाते है, स्नेह एव सद्भाव की जगह अहकार एव कपट वढने लगता है. सादगी प्रदर्शन मे बदल जाती है अत धन आने पर जो मनुष्य अपने सद्गुणो मे स्थिर रहता है, तभी वस्तुत. उसको मानवता की परीक्षा होती है, इसीलिए सोना मनुष्य की कसौटी माना गया है.

लोकसंज्ञा .

जव तक लोकसज्ञा (सासारिक वासना) है, तब तक 'स्व' मे आलोक (कैवल्य) नही जग सकेगा, और जव तक आलोक नही जगे, तव तक लोकाग्र (सिद्धिस्थान) पर पहुचना नही होगा.

लोकाग्र (सिद्धिस्थान) स्थान के इच्छुक को मन से लोकसज्ञा मिटानी ही होगी.

आत्म ज्ञान .

जिसने देह एव आत्मा का भेद समझ लिया, उसे देह के छूटने पर कभी खेद नही होता.

जिसने 'निज स्वरूप' का ज्ञान प्राप्त कर लिया उसे जिन-स्वरूप प्राप्त करने में विलब नही होता.

जिसने मन को समझा लिया, उसे वन या भवन मे कोई अन्तर नही दीखता

तप :

तप—आत्मशक्तियो को जागृत करने की शखध्वनि है. आत्म-देवता के मदिर की प्रज्वलित ज्योति-शिखा है. जीवन-मथन करके सत्य का नवनीत प्राप्त करने की एक प्रक्रिया है, और है हृदय स्वर्ण को तपाकर निखारने की शोधन-विधि.

जिसने सच्चे एव विशुद्ध हृदय से तप किया है, उसके हृदय का ताप निश्चित ही शात हो गया

जिसने तप के साथ लालसा एव दुर्भावना का सयोग कर दिया, उसने मधुर दूध मे शखिया मिला दिया.

सच्चा तप, ताप हर्ता है, झूठा तप ताप बढाता है.

एक प्रवाह · दो तट

जैनधर्म के रत्नत्रय सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान एव सम्यग् चारित्र को कही-कही त्रिवेणी भी कहा गया है. मैं सोचता हू, यह त्रिवेणी कहा ? यह तो सम्यग् ज्ञान की एक महा नदी है, जो सम्यग् दर्शन एवं सम्यक् चारित्र के दो तटो का स्पर्श करती हुई बह रही है. ऐसा

जीवन की धरती पर वरसती है, तो सत्य, सदाचार, सेवा और स्नेह की हरियाली से जीवन की धरती लहलहा उठती है.

जैसा विचार, वैसा आचार

मनुष्य का आचार उसके विचारो का प्रतिविम्व है, तन और वर्तन उसके मन की गति की धडकन है .

जो मनुष्य अपने विचारो मे पतित, अधम एव दुष्ट भावना को प्रश्रय देता है, उसके आचार मे इनकी प्रतिच्छाया अवश्य ही उतर आती है.

जो मनुष्य अपने मन मे पवित्रता, स्नेह एव सद्भाव की धारा बहाता है, उसके जीवन मे उनका विश्वजनीन प्रभाव निश्चित ही झलक उठता है

इसलिए मन को पवित्र रखो, वर्तन पवित्र रहेगा विचारो को विशुद्ध रखो, आचार शुद्ध रहेगा

पुण्य भी, पाप भी :

मन, वचन और कर्म के स्रोत से पुण्य की धारा भी वहती है, और पाप की धारा भी. मन से शुद्ध चिंतन करके मोक्ष भी प्राप्त किया जा सकता है तथा दुष्ट चिंतन के द्वारा सप्तम नरक भी.

वाणी से क्रूर एवं असत्य वचन वोल कर भयकर अनर्थ भी किया जा सकता है, और भगवान का जप भी, तथा स्नेह पूर्ण मधुर वचनो से आनद की वर्षा भी की जा सकती है.

शरीर से अन्याय, अत्याचार करके ससार को सत्रस्त भी किया जा सकता है, और सेवा, सहयोग के द्वारा प्रसन्नता और प्रेम भी बाँटा जा सकता है

सत्य और सम्प्रदाय

सप्रदाय लघु सरोवर की तरह सीमित है, और सत्य विराट् सागर की तरह असीम

जो विराट् की उपासना करता है, वह लघु को अपने भीतर समाहित कर लेता है, किंतु जो केवल लघु को ही पकड़े बैठा है, वह विराट को कैसे प्राप्त करेगा ?

सत्य की उपासना करने वाला सप्रदाय को पचा सकता है. किन्तु केवल सम्प्रदाय को पकडने वाला सत्य का दर्शन नही कर सकता.

उपवास

विधि पूर्वक तप करने से शरीर क्षीण नही होता, किन्तु नीरोग होकर तेजस्वी बनता है, जिस प्रकार कि उपयुक्त धूप का सेवन करने से आरोग्य की वृद्धि होती है.

भारतीय सस्कृति मे उपवास न केवल एक आध्यात्मिक चिकित्सा है, किन्तु एक सुन्दर शारीरिक चिकित्सा भी है

सुना है, उपवास चिकित्सा के अनुसधान मे अमेरिका ने बारह करोड डालर खर्च कर दिए है और भारतवासी को तो यह विज्ञान विरासत मे मिला है किन्तु खेद है, भारत उपवास से उदासीन हो रहा है, और पश्चिम वाले उसकी शक्तियो का अनुसधान कर रहे है.

सुधार का मत्र

एक साधक—आने जाने वाले भक्तो के समक्ष अपने दूसरे साथियों के खूब दोप बताता और जी भर कर अपनी प्रशसा करता.

लोगो मे उसकी अश्रद्धा हो गई, साथी उसे बुरा भला कह कर क्षब्ध परेशान करते रहते

साधक ने गुरु के पास शिकायत की, गुरु ने कहा—"तेरी आदत तो वहुत अच्छी है, किंतु इसमें थोडा-सा सुधार करले तो सब प्रसन्न रहेगे."

साधक ने उत्मुकता पूर्वक पूछा—"कहिए ! आप जैसा कहेगे वैसा ही करु ँगा "

गुरु ने कहा—"तू दोप भले ही देख, किंतु अपने! प्रशसा भी खूव कर, किंतु दूसरो की ! वस, इतने से सुधार से तेरा जीवन सुधर जायेगा "

एकात और निर्जन :

'एकात' और 'निर्जन' मे वहुत अन्तर है.

जिसके मन में काम, क्रोध आदि विकारो के चोर घुसे है, वह कही भी, किसी भी जगल मे रहे, एकांत नही हो सकता, हां 'निर्जन' हो सकता है

जिसके मन के विकार शात हो गए हैं, वह जन-जन के वीच रहकर भी 'एकात वासी' हो सकता है

भगवान महावीर ने कहा है—'जिसका मन शात एव समाधिस्थ है, उसके लिए सोए रहने या जागने मे, अकेला रहने या सभा के वीच बैठने मे कोई अन्तर नही पड़ता—"**सुत्ते वा जागरमाणे वा, एगओ वा परिसागओ वा** "

यही भाव महर्षि व्यास के शब्दो मे प्रतिध्वनित हुआ है—

अन्तर्मु खमना नित्य सुप्तो बुद्धो व्रजन् पठन् ।
पुर जनपद ग्राममरण्यमिव पश्यति ।

—योग वाशिष्ठ :

जिसके मन की गति भीतर की ओर मुड़ गई है, वह सोए, चाहे जगे,

चलता रहे चाहे पढता रहे, वह देश नगर एव गाव को जगल की तरह देखता है.

क्रोध करने पर .

मैने देखा—दियासलाई जव तक रगड खाकर जलती नही है, तव तक लोग उसे डिविया मे बन्द करके जतन से रखते है.

—किंतु, ज्योही, उसने सघर्ष करके अपनी शक्ति को नष्ट किया, लोग उसे तत्क्षरा बाहर फेक देते है.

मैंने अनुभव किया—जो मनुष्य विग्रह से दूर रहकर अपने को स्थिर एव शात रखता है, लोग उसे श्रद्धा से पूजते है.

—किंतु ज्योही वह क्रोध मे उफनकर सघर्ष करने लगता है, तो लोग उसे दुत्कार कर निकाल देते है.

प्रभु का स्वरूप

नमक की पुतली ने सागर से पूछा—"तुम्हारी गहराई कितनी है ?"

सागर ने कहा—"भीतर उतर कर देखो !"

पुतली भीतर गई और उसी मे समागई !

साधक ने प्रभु से पूछा –"प्रभु ! तुम्हारा स्वरूप क्या है ?"

प्रभु ने कहा—"मन के भीतर झाक कर देखो."

साधक मन के भीतर उतरा और स्वय प्रभु स्वरूप वन गया.

सागर को जानने का अर्थ है—सागर मे विलीन होकर सागर बन जाना

प्रभु को जानने का अर्थ है—प्रभु स्वरूप को पाकर स्वय प्रभु बन जाना.

दीक्षा ·

दीक्षा का अर्थ – वेष परिवर्तन करना या शिर का मुंडन करना मात्र

नही है. और नही केवल घर-बार छोड कर भिक्षावृत्ति स्वीकार कर लेना दीक्षा का अर्थ है.

दीक्षा का अर्थ है—जीवन का परिवर्तन, विकारो की जटा का मुंडन ! ममता का त्याग और कपायो को क्षीण करना ही सच्ची दीक्षा है.

बुभुक्षु—(भोग का इच्छुक या भूखा) दीक्षा नही ले सकता. जो सच्चा मुमुक्षु (मुक्ति का इच्छुक—वैरागी) होता है, वही दीक्षा ले सकता है

दीक्षा का अर्थ—प्रव्रज्या (तीव्रगति) है. जो मुक्ति की मजिल की ओर निरंतर वढता जाता है, वही सच्चा प्रव्रजित है.

जिसके मन की आधि, व्याधि, तथा उपाधि शात होकर समाधि जागृत हो गई है, वही दीक्षा ले सकता है.

जिस दीक्षा मे—विकारो से लड़ने का साहस नही है, वह दीक्षा—प्रव्रज्या नही, पलायन है.

दीक्षा गाठ :

आज मेरी दीक्षा गाठ है !

गांठ का अर्थ है—जोड़ना ! दो सिरो को मिलाकर एक वधन में डाल देना !

आज के दिन मेरे मन की डोर का सिरा भय से मुक्त होकर अभय की डोर से जुडा था. द्वेष, क्लेश और वासना से ऊपर उठकर—मैत्री, प्रमोद और वैराग्य की डोर के साथ मेरा गठवधन हुआ था आज के दिन मैंने भोग, आकाक्षा एव स्वार्थ से मुंह फेर कर त्याग, निस्पृहा एव परमार्थ के साथ सम्बन्ध जोड़ा था.

आज के दिन मैंने मृत्यु से नाता तोड़कर अमरता की ओर अपना पहला कदम बढाया था.
अपने कर्तृत्व की स्मृति के साथ भविष्य का सबल देने के लिए आओ मेरी दीक्षा गाठ ! प्रव्रज्या का पुनीत पर्व ! मुक्ति यात्रा का पहला पडाव ! स्वागत है तुम्हारा !

विवेक व वैराग्य

दीक्षा का दीपक तब जलेगा—जब उसमे विवेक का तैल और वैराग्य की बाती होगी
जिस दीक्षा मे विवेक एव वैराग्य का अभाव है, वह दीक्षा केवल मिट्टी का दिया है, जो न मिट्टी का काम दे सकता है और न बर्तन का !

जड और चेतन :

चूल्हे पर बर्तन मे रखा हुआ पानी खौल रहा था उसकी सन-सन की आवाज सुनकर आग ने व्यंग्यपूर्वक कहा—' मित्र जल ! तुम तो मेरी उष्णता को ही समाप्त करना चाहते थे. आज स्वयं उष्णता में मुझे मात कर रहे हो."
जल ने उत्तर दिया—"मैं आज परतत्र हूँ, मनुष्य के द्वारा पात्र में बदी बना दिया गया हूँ इसीलिए तुम मुझे जलाकर चिढा रही हो ! देखो, मुझे स्वतत्र होने दो, फिर तुम्हारी उष्णता को समझूगा."
देह ने आत्मा का उपहास करते हुए कहा—"चेतन्यदेव ! तुम तो मेरी जडता का उपहास कर रहे थे आज स्वय जड की सेवा के लिए रात-दिन पागल हुए जा रहे हो ?'
आत्मा ने उत्तर दिया—मैं अभी वन्धन मे हूँ मोह और आसक्ति ने मुझे अपने चगुल मे फसा कर जड का दास बना दिया है. इसीलिए तुम मुझ पर अधिकार जमा रहे हो और मुझे तुम्हारे चरण पूजने-

पखालने पडते है. देखो, मुझे स्वतत्र होने दो, मोह के बन्धन छूटने दो, फिर देखना तुम्हारी जडता का क्या अता-पता है ?

मैंने अनुभव किया—जल को जब भी स्वतन्त्रता मिली वह आग को पी गया. आत्मा जब भी मोह से मुक्त हुआ जडता को निगल गया.

शास्त्र-केवल प्रेरक :

द्रीपक, केवल पथ दिखला सकता है, किसी का हाथ पकड़ कर पथ पर घसीट तो नही सकता !

शास्त्र. केवल सदाचार की प्रेरणा जगा सकता है, लेकिन उसका पालन करने के लिए किसीको बाध्य तो नही कर सकता.

कानून, सही सोचने-समझने और करने की बुद्धि दे सकता है, किंतु डडा लेकर किसी के पीछे-पीछे तो नही घूम सकता !

राम बनना होगा

जो पुरुष अपनी धर्मपत्नी को सीता की भांति पवित्र, और राजीमती की भाति प्रेम-मूर्ति देखना चाहता है, उसे राम ओर नेमिनाथ का चरित्र सीखना होगा यह नही हो सकता, पुरुप रावण और रथनेमि की भाति पर-स्त्री के रूप-लावण्य पर ललचाता रहे, और पत्नी को सीता और राजीमती का चरित्र सिखाता रहे.

शास्त्री और साधु

साधु और शास्त्री मे बहुत बडा अतर है.

जो केवल शास्त्रो की चर्चा करता है, वह शास्त्री है, किंतु जो उनपर आचरण भी करता है वह साधु है.

शास्त्री होकर साधु होना सोने में सुगन्ध है.

सत्य : शक्ति के अनुसार :

सत्य अवश्य ही श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण है, किंतु अपनी योग्यता एव शक्ति के अनुसार ही पाने का प्रयत्न करना चाहिए शक्ति के बाहर चलने से व्यक्ति लडखडा जाता है.

प्रकाश कितना महत्वपूर्ण है, किन्तु प्रखर प्रकाश के सामने देखने से क्या आँखे चुंधिया नही जाती ?

भक्ति दासता नही :

भक्ति दासता नही है, दासता में स्वामी और सेवक के बीच भेद की बहुत बडी खाई पडी है, जबकि भक्ति मे भक्त और भगवान के मध्य अभेद की अनुभूति होती है भगवान के साथ तादात्म्य भाव जागृत हुए विना सच्ची भक्ति हो नही सकती, इसलिए भक्ति दासता नही, भगवत्स्वरूप—अर्थात् आत्मस्वरूप की उपासना है.

ध्यान का फल :

ध्यान से हृदय बलवान, मन निर्मल और आचरण पवित्र होता है.

मार्ग-दर्शन

ध्यान-साधना अभ्यास से सिद्ध होती है, किन्तु गुरु का मार्ग-दर्शन उसमें अत्यत आवश्यक है दीपक अपने तैल बाती से प्रकाशित होता है, किन्तु उसमे अग्नि का स्पर्श भी अत्यन्त आवश्यक है.

जप, चमत्कार .

जप समर्पण की एक विशुद्ध प्रक्रिया है साधक अपने आराध्य के चरणो मे निष्ठा के साथ जब समर्पित होता है. तो एक अद्भुत तल्लीनता, एकात्मता की अनुभूति जग पडती है

नाम जप के साथ जब मनोयोग की दृढ़ता एवं प्रखरता बढ़ती है तो साधक की आत्मा मे अपूर्व बल जागृत होता है, वह सिद्धि-लाभ प्राप्त करता है, व्यावहारिक भाषा में एक चमत्कारी पुरुष बन जाता है.

यह चमत्कार और कुछ नही,सिर्फ प्रखर मनोयोग से उद्भूत आत्मिक-शक्ति का एक निदर्शन मात्र है.

ध्यान की विशुद्ध धारा .

साधना मे आनन्द तब प्राप्त होता है जब ध्यान सिद्ध हो जाता है. भारत की साधना-पद्धति मे ध्यान का अत्यधिक महत्व इसीलिए है कि वह आत्म-विशोधन की सबसे श्रेष्ठ प्रक्रिया है.

जिस प्रकार विशाल रुई के ढेर को एक नन्ही-सी चिनगारी भस्मसात् कर डालती है. बादलो के अपार समूह को हवा का एक झोका तितर-बितर कर देता है, वैसे ही ध्यान की विशुद्ध धारा कर्म समूह को नष्ट कर देती है.

ध्यान का अर्थ ·

ध्यान का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—चिन्तन ! जो कि— ध्यै चिन्तायां' धातु से निष्पन्न होता है.

किन्तु ध्यान का प्रवृत्तिलभ्य अर्थ—चिन्तन के एकाग्रीकरण से स्पष्ट होता है

मन की दो अवस्थाएँ है—चल और स्थिर ! चल अवस्था चित्त है और स्थिर अवस्था ध्यान !

हिलते हुए जल में जिस प्रकार प्रतिबिम्ब अस्पष्ट दिखाई देता है,

उसी प्रकार चचल चित्त मे आत्मा की छवि विशुद्ध रूप से अंकित नही हो सकती.

इसीलिए जैनदर्शन ने ध्यान का अर्थ किया है—मन, वचन एवं काया की अशुभ योग से निवृत्ति—योग निरोध—और शुभ योग में एक-लीनता—एकाग्रता।

अहकार का भार :

पर्वत की ऊँचाई पर वही सरलतापूर्वक चढ सकता है, जिसके पास अधिक भार नही होता

भक्ति मार्ग की चढाई पर वही साधक आसानी से चढ सकता है, जिसके मन में अहकार का भार नही होगा.

कुशल सवार :

कुशल घुडसवार घोड़े को मारता नही, साधता है, वह चाबुक से नही, इशारो से चलाता है.

चतुर साधक। इन्द्रिय एव मन रूपी घोडे को मारो नही, साधो ! सधा हुआ मन तुम्हारे सकेतो पर चलेगा और अक्षय आनन्द मार्ग पर ले जायेगा।

ध्येय :

साधक का मन निरतर इष्ट साधना मे लगा रहता है, जिस प्रकार कि दिशासूचक यत्र की सुई हर समय ध्रुव की ओर झुकी रहती है.

गुप्त द्वार .

इगलेड के एक महानगर मे शेक्सपियर का नाटक खेला जा रहा

था धर्म पुरोहितो के लिए नाटक देखना निषिद्ध था. एक पादरी को नाटक देखने की तीव्र इच्छा जागृत हुई अपनी इच्छा को वह रोक नही सका और थियेटर हाल के मैनेजर के नाम एक गुप्त पत्र लिखा—"क्या आप महरवानी करके मुझे थियेटर हाल के पिछले द्वार से प्रविष्ट होने की व्यवस्था कर सकते है ? क्योकि मुझे वहाँ आते हुए कोई देख न सके."

मैनेजर ने उत्तर दिया—"मुझे खेद है कि यहाँ पर ऐसा कोई भी गुप्त द्वार नही है, जो ईश्वर की दृष्टि मे न आता हो."

नियम और साधना वही है जो साधक के लिए अकेले में और सबके सामने मे—**एगओ वा परिसागओ वा**—समान रूप से साधी जाती हो.

चार प्रश्न !

यूनान के एक दार्शनिक से किसी जिज्ञासु ने चार प्रश्न पूछे.

विश्व मे सबसे विराट् क्या है ?

आकाश ! दार्शनिक ने उत्तर दिया.

सबसे श्रेष्ठ वस्तु क्या है ?

शील !

सबसे सरल वस्तु क्या है ?

उपदेश !

और सबसे कठिन क्या है ?

आचरण !

क्रिया रूपी चासनी

जलेवी और सूत्रफैनी को जब तक शक्कर की चासनी में नही डुबोया

ाता, तव तक उसमे माधुर्य नही आता, और बिना माधुर्य के लोग उसे पसद नही करते !

ज्ञान रूपी जलेवी जव तक क्रिया रूपी शक्कर की चासनी में नही डूब जाती, तव तक उसमे मधुरता प्रकट नही होती, और नही वह जन-मन को आकर्षित कर सकती है.

अच्छा खिलौना :

एक वालक मिट्टी के गदे खिलोने से खेल रहा था. पिता ने उससे खिलौना छीन लिया तो वह रोने लगा. माता ने वालक के हाथ में एक दूसरा अच्छा खिलौना दे दिया तो वालक पुन. खुश होकर उससे खेलने लग गया.

मन रूप वालक गदे विचारो के खिलोने से खेलता है, साधक जव उन्हे हटाने का प्रयत्न करता है तो मन उदास व खिन्न-सा हो जाता है. किन्तु सद्गुरु रूप माता उसके सामने शुभ विचारो के सुन्दर खिलौने रख देते है और मन उन्ही अच्छे विचारो मे रम जाता है.

छोटा-सा पाप

पैर मे लगा छोटा-सा काँटा दर्द करता है, आँख मे गिरा छोटा-सा रजकण बेचैन किए रहता है, और मन को लगी छोटी-सी वात हमेशा उद्विग्न किए रखती है, तो फिर किसी को 'छोटा' मान कर लापरवाह क्यो होते है ?

अग्नि की छोटी-सी चिनगारी, नाव का छोटा-सा छेद और जहर का छोटा-सा कण क्या नही कर सकता ? पर वह भी जो नही कर सकता, वह सव कुछ कर सकता है —मन का छोटा-सा पाप !

मन का छोटा-सा पाप साधना का सपूर्ण सत्त्व समाप्त कर सकता है.

पुण्य को नजर न लगे .

माँ अपने बच्चे को दूध पिलाते समय लोगो की नजर से बचकर बैठती है कि कही बच्चे को किसी की नजर न लग जाए.

पुण्य करते समय भी सावधान रहो, कोई भी शुभ कर्म इस प्रकार करो कि उसे किसी की नजर न लगे !

ध्यान, तप, दान, सेवा आदि करते समय हमेशा ध्यान रखो कि उसका किसी के सामने बखान न किया जाए, वर्ना लोगो की नजर लग गई तो तुम्हारे सत्कर्म का रस सूख जाएगा !

पाप : प्रकट या गुप्त :

पाप चाहे प्रकट में किया जाए, चाहे लुक-छिपकर , वह हृदय में उसी प्रकार खटकता रहता है जिस प्रकार कि अँधेरे या उजाले में चुभा हुआ काँटा !

जान अनजान मे खाया हुआ विष भी प्राणघातक होता है, फिर यह क्यो नही समझते कि पाप तो उससे भी अधिक तीव्र व भयानक विष है ! उससे कैसे बचा जा सकता है ? .

पाप · आदत बन जाती है :

मनुष्य पहली बार जब पाप करता है तो उसकी आत्मा भयभीत होती है दूसरी बार मे वह अपने आपको धिक्कारता है, अपने से ही घृणा करने लगता है किन्तु जब वह बार-बार पाप करने लगता है तो, भय भी निकल जाता है, घृणा भी मिट जाती है और पाप, पाप ही प्रतीत नही होता, वह एक आदत बन जाती है

बुराई ·

आग से आग बुझ नही सकती, खून से खून धुल नही सकता, फिर

बुराई से बुराई का प्रतिकार कैसे होगा ? पाप से पाप नष्ट कैसे किया जायेगा ?

लँगडा यात्री

जो देखता खुद है, मगर दूसरो के पैर से चलना चाहता है, वह लँगड़ा यात्री कभी भी अपनी मजिल तक नही पहुँच सकता.

जो चिन्तन स्वय करता है, मगर उस पर दूसरो को हो चलाने का प्रयत्न करता है वह कभी सत्य के द्वार तक नही पहुँच सकता.

ज्ञान का अंकुर :

वीज जब मिटता है तब अंकुर प्रस्फुटित होता है.

अहकार जब मिटता है तब ज्ञान का अकुर प्रस्फुटित होता है.

अहंकार शून्यता

अल्वर्टआइन्स्टीन से किसी ने पूछा—"वह सबसे महत्वपूर्ण वस्तु क्या है, जिसके विना विज्ञान की खोज असभव है."

आइन्स्टीन ने उत्तर दिया—"अहकार शून्यता, जहाँ अहंकार है, वहाँ ज्ञान नही, विनम्रता से ही विज्ञान की खोज सभव है."

विशुद्ध धर्म :

पानी से पौधो को जीवन मिलता है, किन्तु यदि गर्म पानी से उन्हे सीचा जाए तो वे मुर्झा कर सूख जाएँगे !

धर्म से जीवन मे आनन्द प्राप्त होता है, किन्तु स्वार्थ बुद्धि से धर्म किया जाए तो जीवन कु ठित व कलुषित हो जाएगा ।

शीतल मधुर पानी पौधो के लिए जीवनदायी है, विशुद्ध उज्ज्वल धर्म जीवन के लिए आनन्द का मार्ग है

पारसमणि :

सम्यग्दर्शन पारसमणि के समान है, जिसे छूते ही प्रत्येक साधना सोना बन जाती है.

धर्म · एक मार्ग, एक सीढी :

धर्म तो केवल एक मार्ग है, वह व्यक्ति को चलाता नही, चलने वाले के लिए सिर्फ एक संकेत है

धर्म महल की सीढी है, जिसके सहारे व्यक्ति महल की चरम ऊँचाई तक पहुँच सकता है.

चलने वाला अगर न चले, चढने वाला अगर न चढे तो इसमे मार्ग और सीढ़ी का क्या दोप ? धर्म की गुहार लगाने वाला यदि उस पर आचरण न करे तो उसमे धर्म का क्या दोष है ?

धर्म का लक्ष्य .

धर्म का एक ही लक्ष्य है—पुरुष मे प्रसुप्त पुरुषोत्तम को जगा देना. जन मे छिपी जिन की अनुभूति को उद्बुद्ध कर देना

जो धर्म अपने इस लक्ष्य मे सफल नही होता है, वह वस्तुत. धर्म नही, धर्म के नाम पर कुछ और है !

जीवन मे उतारना होगा .

रोटी के टुकडे को मुँह मे रखने मात्र से भूख नही मिटती, उसे पेट मे उतारा जायेगा तभी भूख मिटेगी, शक्ति आयेगी

धर्मशास्त्र के उपदेशो को सिर्फ वाणी पर धरने से जीवन का सुधार नही होता, उन्हे जीवन मे उतारा जायेगा, तभी जीवन सुधरेगा और आत्मिक बल जागृत होगा.

जिस किसी को सुख एव शाति की कामना है, उसे इस मार्ग पर आना ही होगा.

दो चित्र अहिंसा और निस्पृहता :

सगम नामक शक्तिशाली दुष्ट देवता ने श्रमण महावीर को भयकर यातनाएँ देने के बाद एक दिन व्यग्यपूर्वक पूछा—"कहिए प्रभु ! आपको कोई कष्ट तो नही ?"

महावीर ने शात भाव से कहा— "बस, कष्ट यही है कि तुम दूसरो को कष्ट देकर स्वय पतित हो रहे हो !"

सम्राट अलेक्जेंडर ने एकदिन सत डायोजिनिस से पूछा—"एक सम्राट तुम्हारे सामने खड़ा है, बोलो क्या चाहते हो ?"

डायोजिनिस ने लापरवाही के साथ कहा—"बस, चाहता यही हूँ कि तुम एक तरफ हट जाओ और धूप आने दो."

मैंने अनुभव किया—हिंसा और आसक्ति सदा ही अहिंसा और निस्पृहता के समक्ष मात खाती रही है.

सदाचार की गध

इतर की दुकान पर इतर खरीदने वाले को ही नही, किन्तु जो उसके पास से निकलता है, उसे भी सुगध मिल जाती है.

सत के चरणो मे धर्म स्वीकार करने वाले को ही नही, किन्तु उसकी सेवा करने वाले को भी सदाचार की सौरभ मिल जाती है.

आनन्द मन मे है

आनन्द का स्रोत मन मे है, पदार्थ मे नही ! मन खिन्न होने पर मधुर से मधुर पदार्थ भी आनन्ददायी नही लगता ! आश्चर्य

है फिर भी दुनिया आनन्द पाने के लिए पदार्थ की ओर दौड़ रही है. मन मे यदि आनन्द का स्रोत वहने लग जाए तो विना किसी पदार्थ के भी आनन्द की उपलब्धि हो सकती है

धर्म का महत्व ·

वहुमूल्य हीरा यदि पीतल की अँगूठी में जडा गया तो उसका मूल्य कम हो जायेगा.

पवित्र धर्म यदि पाखडियो के हाथ मे चला गया तो उसका महत्व घट जायेगा.

सदाचार का तार :

विद्युत् की अदम्य शक्ति 'तार' मे प्रवाहित होती रहती है, उसी प्रकार धर्म का दिव्य तेज सदाचार के 'तार' मे प्रवाहित होता रहता है.

छोटा-सा छिद्र :

मैंने देखा है—वड़े-वड़े वाधो को छोटा-सा छेद तोड़ डालता है.

मैंने सुना है—वडी-वडी नौकाओ को छोटा-सा छिद्र डुवो देता है.

मैंने अनुभव किया है—वडे-वडे धर्मात्माओ को छोटी-सी वासना ले डूवती है.

आत्मा : धर्मात्मा · परमात्मा :

आत्मा को परमात्मा वनने से पहले—धर्मात्मा वनना जरूरी है, जैसे कि बीज को वृक्ष वनने से पहले अंकुर बनना जरूरी है.

बीज मे जिस प्रकार वृक्ष की सत्ता है, उसी प्रकार आत्मा मे परमात्मा की सत्ता अन्तर्निहित है.

सत और सम्राट

एक सत के पास कोई सम्राट आया, अहकार भरी भाषा मे पूछा—'तुम कौन हो ?'

सत ने मद हास के साथ कहा—'जो तुम हो, वही मैं हूँ.' सम्राट ने कुछ नरम होकर पूछा—'इसका क्या मतलब ?' सत ने उसी मुस्कान के साथ कहा—'तुम दुनिया को तलवार से जीतते हो, और उसके शिर पर शासन करते हो ! मैं दुनिया को प्रेम से जीतता हूँ, और उसके हृदय पर शासन करता हूँ

सम्राट सत के चरणो में झुक गया—"नही तुम मुझसे भी महान् हो."

मन का पीलिया रोग :

मन मे जव द्वेष होता है, तो बाहर मे शत्रु दिखाई देते हैं

मन मे जव भय होता है. तो झाड़ियो व खडहरो मे भूत-प्रेत दिखते हैं.

मन मे जब पाप होता है, तो दुनियाँ मे सब चोर और बेईमान दिखाई पड़ते हैं

पीलियारोगी सबको पीला ही पीला देखता है मित्र ! तुम्हारे मन का पीलिया रोग मिटा दो तो तुम्हे वस्तु का सही स्वरूप समझ मे आयेगा. आँखो का रगीन चश्मा हटा दो तो, तुम दुनियाँ का असली रूप देख सकोगे

मन मे जव प्रेम, अभय और निर्मलता होगी तो विश्व का प्रत्येक प्राणी तुम्हे मित्र तुल्य प्रतीत होगा, दुनिया की हर घाटी तुम्हे नदनवन-सी रमणीय लगेगी और प्रत्येक मनुष्य मे तुम सचाई और ईमानदारी की तस्वीर देख सकोगे.

एक धर्मः एक दर्शन :

ससार का यदि कोई एक धर्म हो सकता है तो वह है—अहिंसा !

अहिंसा का अर्थ है—प्रत्येक प्राणी के अस्तित्त्व को स्वीकार करना. उसकी सत्ता को अपने समान महत्त्व देना और मैत्री एव समानता का व्यवहार रखना.

क्या कोई भी व्यक्ति इस मानव-धर्म से इन्कार कर सकता है ?

संसार का यदि कोई दर्शन हो सकता है तो वह है—अनेकांत !

अनेकात का अर्थ है—प्रत्येक सत्य को स्वीकार करने की उदारता, विचारो का अनाग्रह और बौद्धिक-मैत्री !

क्या कोई भी विचारक इस जीवन-दृष्टि से इन्कार कर सकता है ?

अहिंसा . रेडियम :

अहिंसा जीवनदायिनो शक्ति है.

गाधीजी ने एक स्थान पर लिखा है 'अहिंसा रेडियम की भाँति काम करती है. रेडियम की अल्पतम मात्रा भी किसी रुग्ण अग पर रख दी जाये तो वह निरतर अपना कार्य करती हुई उसे स्वस्थ वना देती है. समाज के रुग्ण देह पर यदि अहिंसा का रेडियम रखा रहे तो निश्चित ही वह उसके विकारो का समूल नाश करके उसे स्वस्थ प्रसन्न वना देगी.

सामाजिक पुनर्जीवन के लिए अहिंसा ही एक विश्वसनीय शक्ति है.

पवित्र पथ :

अहिंसा और सत्य केवल ऋपियो का धर्म नही है, किन्तु यह तो जीवन का वह पवित्र पथ है, जिस पर चले विना सुख-शाति के दर्शन हो नही हो सकते.

पर पीडा की अनुभूति :

पैर तेजी से बढते जा रहे थे, एक ककर नीचे आ गया, पीडा से तिल-मिलाकर तिरस्कार के स्वर मे मैंने ककर से कहा –"दुष्ट, दूसरे को व्यर्थ कष्ट देने मे तुम्हे क्या आनन्द आता है ?

ककर ने नम्रता के साथ कहने का प्रयत्न किया—"महाशय ! एक चुपचाप पडे निरीह ककर के अस्तित्व को कुचल डालने मे आपको भी क्या आनन्द आता है ?

मैंने अनुभव किया—"मेरी थोडी-सी पीडा जब मुझे यो विचलित कर देती है, तो एक निर्बल को यह प्राणघातक आक्रमण कितना भयकर प्रतीत होता होगा ?" मैं स्व-पर-पीड़ा की अनुभूति की गहराई में डूब गया.

भाग्य और पुरुषार्थ

जो भाग्य का निर्माण नही कर सकता, वह भाग्य के रहस्य को जानकर भी क्या करेगा ?

भाग्य के पीछे चलना कायरता है, भाग्य को अपने पीछे चलाना वीरता है ! पुरुषार्थ है !

जिसका पुरुषार्थ जागृत है, उसका भाग्य कभी भी अन्धकार मे नही !

जितना महत्व भाग्य को दिया जाता है, उतना महत्त्व यदि पुरुषार्थ को दिया जाय तो निश्चित ही मनुष्य सुखी बन सकता है.

सन्त

मैंने सुना है—कीचड के दुर्गन्धमय वायुमडल मे रहकर भी कमल अपनी सौरभ विखेरता रहता है.

मैंने देखा है— नुकीले काँटो से घिर कर भी गुलाब मंद-मद हँसता रहता है.

मैंने अनुभव किया है—संसार की ममता और वासना के बीच रहकर भी संत सदा निस्पृह एवं निर्लेप बना रहता है.

जड से भी नीचे :

मैंने देखा—अगरबत्ती जलकर दूसरो को सुगध देती है, मोमबत्ती जलकर दूसरो को प्रकाश देती है.

चदन घिसकर भी सौरभ बिखेरता है और ईख पिलकर भी मधुर रस देता है. किन्तु मनुष्य सकट में पड़कर दूसरो को क्या देता है ? आक्रोश, गालियाँ, दुराशीष !

क्या मनुष्य जड़ से भी नीचे स्तर पर चला गया है—यह एक प्रश्न मेरे मन मे आज भी कौंध रहा है.

दो पैर :

अहिसा और सत्य को अलग-अलग नही किया जा सकता.

सत्य की साधना के लिए अहिसा, और अहिसा की साधना के लिए सत्य उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार चलने के लिए आगे पीछे के दोनों पैर

दो पैर के विना न मनुष्य गति कर सकता है, न पशु-पक्षी-ही और न धर्म भी.

मन मैला, तन उजला .

जगत जड है, बाहर मे है, वासना या आसक्ति-चेतन है, वह भीतर मन मे है.

यदि भीतर मे वासना न हो, तो जड़ जगत् किसी के लिए कभी भी बंधन नही बन सकता. इसलिए वासना-तृष्णा—यही सबसे वड़ा बधन है—**नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो**—इस (तृष्णा) के समान दूसरा कोई बंधन नही है.

आश्चर्य है—आज का साधक जगत से लड रहा है, खान-पान, रहन-सहन और विधि-विधान में ही उसने धर्म-कर्म की मूर्तिया खड़ी कर रखी है. वासना का वेग उसे किस गर्त मे ढकेल रहा है, इसकी कोई चिन्ता नही, मन कितना पापी बन गया है. इसका कोई विचार नही ! इसीलिए तो–'मन मैला तन उजला' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है !

आत्मवोध का सूत्र :

लाखो वर्ष के घने अधकार को एक नन्हा-सा दीपक क्षण भर में नष्ट कर सकता है

आत्मबोध का एक ही लघु सूत्र जन्म-जन्म के अज्ञान अधकार को कुछ ही क्षणो मे नष्ट कर सकता है.

कर्म: अकर्म :

भगवान महावीर ने कहा है—**सम्मत्तदंसी न करेई पावं** सम्यक्दर्शी ससार मे रहता हुआ, कर्म करता हुआ भी पाप नही करता.

साधारणत यह बात अटपटी-सी लगती है, पर इसका मर्म वहुत गहरा है सम्यक्दर्शी वह है जिसके मन की आसक्ति और वासना का वधन छूट गया है. जब कर्म मे आसक्ति नही होती तो कर्म, पाप का रूप नही लेता, वह कर्म 'अकर्म' ही रहता है.

इसो की प्रतिध्वनि गीता मे गूज रही है—

कर्मण्यकर्म य. पश्येदकर्मणि च कर्म यः।

स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥

—४।१८

जो कर्म मे अकर्म देखता है और अकर्म में कर्म देखता है. वही बुद्धिमान समस्त कर्म करने मे उपयुक्त है.

जहाँ कर्म में आसक्ति नही, कर्तव्य का अहंकार नही, वहां कर्ता भी अकर्ता हो जाता है.

रथस्थ वामनं :

जगन्नाथपुरी की रथयात्रा का विशाल जुलूस देख कर अभी अभी एक विचारक लौट कर आए हैं उन्होने बताया—"रथासीन भगवद् मूर्ति के दर्शन हेतु अपार जन समुद्र उमड पडता है, देश के कोने-कोने से लाखो दर्शक आते हैं और यात्रा दर्शन के लिए पलके बिछाए खड़े रहते हैं."

मैंने पूछा—मुख्य आर्कषण क्या है ?

विचारक ने बताया—दृश्य की भव्यता तो है ही, किंतु मुख्य कारण है लोगो का यह विश्वास कि—रथासीन भगवान के दर्शन करने वाला सद्गति को प्राप्त हो जाता है, **रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते**—रथस्थ वामन के दर्शन करने वाले का पुनर्जन्म नही होता." रथस्थं ... श्लोक पर चिंतन करते-करते मुझे लगा, श्लोक बिल्कुल सही है, और विश्वास भी सही है, बशर्तें कि श्लोक की भावात्मा का का स्पर्श किया जाए ! कठोपनिषद १।३।३ में आत्मा को रथी और शरीर को रथ कहा है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीर रथमेव तु।

वामन से तात्पर्य आत्मा है, जो सूक्ष्म में विराट् सत्ता का प्रतीक है.

इस प्रकार श्लोक का आध्यात्मिक फलित होता है—जो शरीर रूपी रथ पर अधिष्ठित आत्मा का दर्शन करता है—अर्थात् आत्म स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है वह मुक्त हो जाता है.

काश! उन लाखो दर्शको मे से कोई एकाध भी श्लोक के इस आध्यात्मिक भाव का स्पर्श कर पाता..........!

प्रेम का वृक्ष

प्रेम एक विराट् वृक्ष है, अगणित जिसकी शाखाएं और असख्य पत्तिया है. किंतु नाजुक इतना है कि अपवित्रता का एक कीड़ा ही इसे भीतर से खाकर खोखला बना देता है.

प्रेम में जितनी पवित्रता एवं विराट्ता होगी उतनी ही उसकी महत्ता बढ़ेगी

भगवद् भक्ति :

जिस प्रकार प्रात: काल का वन-विहार शरीर एवं मन में नवस्फूर्ति भर कर उसे दिनभर के लिए प्रोत्साहित एवं तरोताजा बना देता है उसी प्रकार भगवद्भक्ति और स्तुति एव प्रार्थना मनुष्य के मन एवं आत्मा को संजीवन शक्ति प्रदान कर उसे कष्टो में भी हंसते रहने की दिव्य शक्ति प्रदान करती है.

प्रात: काल जब प्रकृति नव जागरण की अगडाई भरती है, शीतल-मद-सुगधित समीर ठुमक-ठुमक बहता है, और पुष्पो की भीनी-भीनी सुरभि मन को आनद विभोर बना रही हो तो उस समय का उपवन विहार कितना आनन्ददायी होता है ?

इसी प्रकार जब साधक वीतराग प्रभु के चरणो मे सर्वात्मना समर्पित होकर चिंता, शोक, भय आदि से मन को मुक्त बनाकर प्रभुभक्ति के

निर्मल, अभय मधुर वातावरण मे उछ्वास लेता है, श्रद्धा,करुणा और वात्सल्य की मधुर सुरभि से साधक का जीवन नवसजीवन प्राप्त करता है, उस समय उसका जीवन पुष्प महक उठता है, और आनन्द उल्लास से तरोताजा वन जाता है.

धर्म : मारक या सुधारक .

कुछ साधक कहते हैं—शरीर, इन्द्रिय और मन बुरे है, आत्मा का अहित करने वाले हैं, डुवाने वाले है. इसी कारण कुछ अपनी आँखों को फोड़ डालते हैं, कि बुरा न देख सके, कुछ जिह्वा आदि अवयवो का छेदन कर डालते है कि बुरा न बोल सके, न बुरा आचरण कर सके और कुछ तो जीतेजी जल मे अथवा अग्नि मे समाधिस्थ ही हो जाते है, पर क्या यह धर्म है ?

शरीर एव इन्द्रियो को नष्ट करने की वात कहने वाला नाशक धर्म और मन को मार डालने की वात कहने वाला मारक धर्म हमे नही चाहिए !

जैन धर्म कहता है—शरीर, इन्द्रिय एव मन भी आखिर शुभ कर्म के उदय से ही प्राप्त होते हैं, इनको मारने की जरूरत नही, सुधारने की जरूरत है. शरीर को सत्कार्य में प्रवृत्त कीजिए इन्द्रियों को शुभ कार्य मे जोड़िए और मन को शुद्ध सात्विक भावो की ओर मोडिए—ये सव तुम्हारे सुधारक और कल्याण करने वाले सिद्ध होगे.

चालक कैसा है ?

यह न देखिए कि आपके पास उपलब्ध साधन कैसे हैं ? उनकी शक्ति कितनी और क्या है ? किंतु यह देखिए कि उनके उपयोग का तरीका आपके पास क्या और कैसा है ? आप उनका उपयोग कितनी योग्यता एवं प्रखरता के साथ कर सकते हैं ?

क्या निकट इतिहास के इस अनुभव को आप भूल गये कि अमरीका के सर्वश्रेष्ठ पैटन टैंक और सेबर जेट विमानो की शक्ति और प्रतिष्ठा अनाडी चालको के हाथो धूल मे मिल गई, और साधारण भारतीय सेच्युअरी टैंक, नेट विमानो ने मैदान जीतकर अपनी प्रतिष्ठा मे चारचाद लगा दिए !

यह मत देखिए कि साधन कैसे हैं ? किंतु यह देखिए कि उनका चालक कैसा है ?

अतीत और भविष्य .

अतीत की स्मृति भले ही रहे, पर दृष्टि सदा भविष्य की ही रहनी चाहिए

अतीत की ओर मुड-मुडकर देखने वाले के कदम सदा अतीत से बधे रहते है.

भविष्य की ओर दृष्टि फैलाने वाले की बुद्धि एव कल्पना पर लगाकर अनन्त भविष्य की ओर दौडती रहती है.

मृत्यु पर विश्वास :

कहा जाता है– ससार मे सबसे बडा श्मशान रोम मे है, जहां पर ६० हजार मुर्दे एक साथ जलाये जा सकते है.

मेरे मन मे प्रश्न उठा—"इतने मुर्दों को एक साथ जलता देखकर भी क्या मनुष्य को अपनी मृत्यु पर विश्वास नही हुआ ? जो प्रतिक्षण जीवन के पीछे बेतहाशा दौड रहा है ? और मृत्यु से भागने का प्रयत्न कर रहा है ?"

मृत्यु आकस्मिक नही !

कौन कहता है कि मृत्यु आकस्मिक आती है

मैंने देखा, अनुभव किया—मृत्यु कभी भी आकस्मिक नही आती, वह धीरे-धीरे अपना पंजा फैलातो रहती है और प्राणी उसके चंगुल में फँसता जा रहा है. किंतु फिर भी प्राणी इतना असावधान है कि अंतिम क्षण तक उसे अपने ऊपर मौत का पजा दिखाई नही पड़ता बस जब संपूर्ण रूप से मृत्यु की पकड़ मे आ जाता है तभी वह मृत्यु को समझ पाता है और तब चीख उठता है--मृत्यु ने आकस्मिक आक्रमण कर दिया.

दान मे अहंकार :

एक कहावत है— बिल्ली को निकाला, ऊँट घुस आया.
मैंने देखा—जो व्यक्ति मन की तृष्णा एव लोभवृत्ति को कम करने के लिए दान देते है, किसी का सहयोग करते हैं, वे दान एव सहयोग करके 'अहंकार' मे इस प्रकार अकड़ जाते है कि दिल-दिमाग सातवे आसपान को छूने लगता है जब जब मैं ऐसी मनोवृत्तियाँ देखता हूँ तो मन मे आता है—लोभ को मिटाने के लिए दान को बुलाया, किन्तु उसकी जगह 'अहंकार' ने अपना आसन जमा लिया, और तब मुझे उपरोक्त कहावत याद आ जाती है—"घर से बिल्ली को निकाला और ऊँट घुस आया."

सत और शासक :

किसी शासक से पूछा गया—कोई दुष्ट तुम्हे कष्ट देता है तो तुम उसे क्या करोगे ?

शासक ने उत्तर दिया—"शस्त्र प्रयोग द्वारा दुष्ट को समाप्त कर दूंगा" संत से भी यह प्रश्न पूछा गया—किसी दुष्ट के सताने पर तुम क्या करोगे ?

सत ने कहा—मैं शास्त्र प्रयोग द्वारा उसकी दुष्टता को मिटा दूगा. मैंने अनुभव किया—शासक का विश्वास शस्त्र में है, वह केवल दुष्ट का प्राण ले सकता है. उसे वदल नही सकता ! और संत का विश्वास शास्त्र मे हैं, वह दुष्ट का प्राण नही लेता, उसके हृदय को बदलता है.

दूसरो के सुख से भी दुखी :

मनुष्यो की तीन श्रेणिया मैंने देखी है—

कुछ मनुष्य अपने ही दु ख से दुखी होते हैं. कुछ दूसरो के दु.ख से भी दुखी होते है, किन्तु कुछ मनुष्य ऐसे भी है, जो दूसरों के मुख से भी दुखी होते है.

उत्साह वेग-सवेग :

उत्साह जीवन मे परम आवश्यक है, वह प्राणो मे स्पंदन की भाँति जीवन का अनिवार्य गुण हैं, किन्तु स्पदन से भी महत्त्वपूर्ण प्राण शक्ति की उष्मा की भाँति उत्साह के साथ विवेक है.

उत्साह एक वेग है, विवेक उस वेग को सही मार्ग पर ले जाता है इसलिए उसे 'सवेग' कहा गया है.

उत्साह गाडी की गति है, विवेक उसे आगे का मार्ग दिखाने वाला प्रकाश है.

हमे केवल वेग नही, सवेग चाहिए विवेक युक्त उत्साह—अर्थात् अधी नही, आख वाली गाडी चाहिए.

श्रद्धा और तर्क :

श्रद्धा जोडती है, तर्क तोडती है.

श्रद्धा और तर्क की सीमा समझने के लिए मैंने एक दर्जी की कला समझी. दर्जी कपड़े को नापकर कैंची से काटता है, अलग-अलग टुकड़े करता है, और फिर एक क्रम में विठाकर उन कपडो को सिलाई करके एक सुन्दर वस्त्र-परिधान तैयार कर देता है.

प्रत्येक बुद्धिमान को दर्जी की यह कला सीखनी होगी. उसे अपने विचार, अपनी परम्परा, सिद्धान्त नीति एव आदर्शों को प्रज्ञा की कैंची से अलग-अलग टुकड़े करके देखने होगे, शर्त केवल इतनी सी है कि वे टुकड़े केवल चीथडे न वने, किन्तु श्रद्धा की सुई से जुडकर सुन्दर परिधान की भाति शोभा वढाने वाले हो.

गति भी, स्थिति भी :

जीवन मे न एकान्त गति का महत्त्व है और न एकान्त स्थिति का. गति-स्थिति का सुमेल ही वस्तुत. जीवन का राजमार्ग है

मैंने देखा—रेल का इजन जो निरन्तर गतिशील है, उसे यदि पटरियो की स्थितिशीलता का सहयोग नही मिला होता, तो न गाडी चलती और न कोई पटरी विछाता !

मैंने देखा—मेरा अगला चरण तब तक गति नही करता है, जब तक पिछला चरण अपने स्थान पर जम कर नही खड़ा हो जाता है. यदि पिछले चरण की स्थिति नही होती तो अगला चरण कभी भी गति नही कर सकता.

मैंने अनुभव किया—केवल गति की बात करना मूर्खतापूर्ण क्रान्ति की डीग है, और केवल स्थिति का पल्ला पकड़कर बैठे रहना—निरी सैद्धान्तिक जडता है.

गति-स्थिति का सामंजस्य ही सफल जीवन की पद्धति है. क्रान्ति और सिद्धान्तवाद की यही एक सही कसौटी है.

चतुर और मूर्ख :

शिष्य ने गुरु से पूछा—"गुरुदेव, तुम सदा कहते रहते हो, तुम मूर्ख हो, समझदार बनो, चतुरता सीखो, पर आखिर मनुष्य तो दोनो समान है, चतुर और मूर्ख मे अन्तर क्या है?

गुरु ने मुस्कराते हुए कहा—"बहुत ही थोड़ा-सा, अन्तर है. मूर्ख जिसे काम करने के बाद सोचता है, चतुर उसे पहले ही सोच लेता है इसलिए मूर्ख काम करने के बाद पछताता है, चतुर काम करके आनन्द प्राप्त करता है"

श्रम: और आलस्य

श्रम से प्राप्त हुई वस्तु मे मधुरता की जो अनुभूति होती है, वह अनुभूति अनायास सुलभता से प्राप्त हुई वस्तु मे नही है.

मैंने देखा है—बडे-बडे श्रीमतो के पुत्रो को दौडा-दौड़ करके पतग को लूटने मे जो आनन्द आता है, वह आनन्द बाजार से खरीद कर लाने में नही आता.

मैंने अनुभव किया श्रम मे आनन्द है, मधुरता है आलस्य और अनायास वृत्ति मे रूक्षता एवं नीरसता है.

सहानुभूति और उपेक्षा :

सहानुभूति और प्रेम भरे दो शब्द किसी भी दुखित-पीडित की व्यथा को मिटाने मे भागाकार का कार्य करते है.

उपेक्षा एव व्यग्यपूर्ण वचन किसी भी पीडित व संकटग्रस्त की वेदना को वढाने मे गुणाकार का काम करते हैं.

सफलता का गुर

मैंने सफलता से पूछा—"ससार तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ रहा है,

जिधर देखो उधर तुम्हे प्राप्त करने की होड़ लग रही है आखिर तुम्हे प्राप्त करने का गुर क्या है ?"

सफलता मुस्कराई—"योग्य व्यक्ति के द्वारा, योग्य समय एव योग्य स्थान पर, योग्य नीति से योग्य कर्म किए जाने पर मैं अवश्य ही प्रसन्न हो जाती हूँ बस यही छोटा-सा गुर है मुझे प्राप्त करने का"

देना लेना ·

जो देना जानता है, उसे सब कुछ स्वतः मिल जाता है.

जो समर्पण देना जानता है, उसे समर्पित होने वालो का भी अभाव नही है.

जहाँ हृदय मे स्नेह, करुणा और मैत्री है उसके लिए ससार मे कही भी स्नेह, करुणा और मैत्री की कमी नही है.

शक्ति की अभिव्यक्ति :

शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए साधन की नितांत अपेक्षा रहती है. जैसा साधन मिलेगा, वैसी ही अभिव्यक्ति होगी.

मैंने देखा—बिजली की अपार शक्ति बल्व को प्राप्त करके प्रकाश के रूप मे जगमगाती है और पंखे को प्राप्त करके हवा के रूप मे व्यक्त होती है, रेडियो के माध्यम से वही शक्ति शब्द रूप मे प्रवाहित होने लगती है, और चूल्हे का माध्यम पाकर अग्नि बन कर प्रज्वलित हो उठती है ट्रेन की तीव्रगति के रूप मे भी विद्युत् शक्ति ही रुपांतरित होती है और विभिन्न यत्रो का सहारा पाकर आदमी की तरह प्रत्येक कार्य सम्पन्न कर लेती है

शक्ति वही है, किन्तु साधनो की अनुरूपता के अनुसार उसकी अभिव्यक्ति विभिन्न होती है

भिक्खवे कुल्लूपमो मया धम्मो देसितो
नित्थरणत्थाय नो गहणत्थाय

—मज्झिम निकाय १।२२।४

भिक्षुओ ! मैंने धर्म रूपी बेड़े का पार जाने के लिए उपदेश किया है, न कि उसे पकड़ बैठने के लिए।

पण्डित कौन ? :

पण्डित कौन ?

क्या जिसने शब्द शास्त्र के अनेक रूप, सूक्तिया और चाटूक्तियो का पाठ कर रखा है, वह पण्डित है ?

क्या जिसने ब्राह्मण कुल मे जन्मधारण किया, वह पण्डित है ?

क्या जिसने शिर पर तिलक आदि लगा रखा हो, और विद्वानो की पक्ति में नाम लिखवा लिया हो वह पण्डित है ?
नही ! नही !!

पण्डित की व्याख्या करते हुए भगवान महावीर ने कहा है—

से हु पन्नाणमते बुद्धे आरम्भोवरए

—आचाराग १।४।४

जो आरम्भ-हिंसा, वैर विरोध, क्लेश एव दोष से उपरत अर्थात् मुक्त है, वही पडित है.

तथागत बुद्ध ने पडित की परिभाषा की है—

न तेन पण्डितो भवति यावता बहु भासति !
खेमी अवेरा अभयो पण्डितो ति पवुच्चति !!

—धम्मपद १९।३

बहुत अधिक बोलने से कोई पंडित नही होता, वास्तव में जो क्षमा-शील, वैर रहित और सदा निर्भय है, वही पडित कहलाता है.

इसी प्रकार का भाव महाभारतकार व्यास ने व्यक्त किया है—

यस्य कृत्य न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रति :
समृद्धिरसमद्धिर्वा स वै पंडित उच्यते ।।

—महा० उद्योगपर्व ३३।१६

सर्दी-गर्मी, भय और अनुराग, सम्पत्ति और दरिद्रता जिसके कार्य में विघ्न नही डालते वही व्यक्ति पण्डित कहलाता है.

और कबीरदास तो पडित की परिभापा में बिल्कुल दो टूक बात ही कह गए—

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पडित भया न कोय !
ढाई अक्षर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय !'

पडित की इन बहुविध परिभाषाओ का निचोड़ मेरे अनुभव ने यो प्रस्तुत किया है—जो वैर-विरोध से मुक्त होकर, सर्वत्र समत्व, स्नेह एवं सद्भाव का अमृत वर्षाता हुआ अभय एव अदीन भाव से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता रहे वही सच्चा पंडित है.

सूत्र का अर्थ .

प्राकृत भाषा में सुत्त शब्द के तीन अर्थ होते हैं—सूत्र, श्रुत और सुप्त !

१. सूत्र का एक अर्थ है धागा—धागा बिखरे हुए अनेक फूलो को एक माला में गूंथ सकता है, इसी प्रकार सूत्र बिखरे हुए अनेक विचारो, अर्थों को एक वाक्य माला मे गुफित कर लेता है

२. सूत्र का दूसरा अर्थ है श्रुत-ज्ञान ! जिस सुई मे सूत्र-धागा पिरोया हुआ रहता है. वह सुई गिर जाने पर भी खोती नहीं,

विद्युत शक्ति के रूपातरण की इस प्रक्रिया को समझने वाला सृष्टि के अनन्त रूपो मे व्यक्त चैतन्य शक्ति की मूल सत्ता को सहजतया समझ सकता है. एक समान चैतन्य शक्ति, विभिन्न प्राणियो के विभिन्न आकार, सस्थान, और प्रकृति मे रूपांतरित होती रहती है

कहावतो के मन मे :

मनुष्य की मनोवृत्ति का अध्ययन करते हुए कुछ पुरानी कहावतें स्मृति में आ गई कितनी यथार्थता के साथ प्रकृति और मानव मन का चित्रण किया है—

थोथा चना, बाजे घना, खाली बादल गाजे घना
नकली सोना, चमके जोर, नया मुल्ला मचावे सोर
कुलटा नार लजावे बहुत, झूठा प्यार दिखावे बहुत.
खारा पानी लावे ठंड, थोड़ा पैसा आवे घमंड !

संकल्प से सिद्धि :

मन में दृढ सकल्प लेकर विशुद्ध साधना प्रारम्भ करो, सिद्धि अपने आप द्वार पर दर्शन देगी

माया और ब्रह्म :

जहाँ माया है वहा ब्रह्म नही रहता और जहां ब्रह्म है वहाँ माया नही रह पाती, माया अज्ञान है, अन्धकार है, मनकी वासना है. ब्रह्म ज्ञान है, प्रकाश है, मन की पवित्र निर्मल साधना है.

माया की उपासना करने वाला ब्रह्म के दर्शन वैसे ही नही कर सकता जैसे अन्धकार में रहने वाला प्रकाश को नही देख पाता.

अहिंसा के दो पहलू :

अहिंसा के दो पहलू है—समन्वय और शान्ति !

विचारो के अनाग्रह और पवित्रता से समन्वय की साधना होती है. और व्यवहार की-कोमलता, सरलता एवं शुद्धता से शाति की प्राप्ति होती है.

जहा समन्वय एव शान्ति है वहां अहिसा के विकास एवं पल्लवन की सम्पूर्ण सम्भावना है.

तर्क और श्रद्धा :

जैन आगमो मे दो प्रकार के साधको का वर्णन आता है, कुछ साधक परीक्षा-प्रधान होते हैं, और कुछ आज्ञा-प्रधान !

परीक्षा-प्रधान साधक भी आज्ञा का महत्व स्वीकार करके चलते है, और आज्ञा प्रधान साधक जीवन में परीक्षा बुद्धि का आदर करते हैं. इसका अर्थ है साधना में तर्क भी चाहिए और श्रद्धा भी तर्क से विचारो में प्रखरता आती है और श्रद्धा मे दृढता !

धर्म तीर्थ है, नौका है :

भगवान महावीर ने धर्म को तीर्थ कहा है, द्वीप कहा है, और संसार सागर से पार जाने के लिए नौका की उपमा दी है.

धम्म तित्थयरे.......

धम्मो दीवो .....

वस्तुत: धर्म ही मनुष्य का रक्षक है, भव से पार उतारने मे समर्थ है, किन्तु वह धर्म नौका के समान पार पहुँचने मे प्रयत्न सापेक्ष भी है. जिस प्रकार नौका को पकड बैठने से पार नही पहुँचा जाता, उसी प्रकार धर्म को केवल शब्दश: पकड लेने मात्र से कोई पार नही पहुँच सकता उसको जीवन में क्रियात्मक रूप देना होगा.

तथागत बुद्ध ने इसीलिए अपने शिष्यों को संबोधित करके कहा था—

खो जाने पर खोज निकालना सहज होता है, उसो प्रकार सूत्र-श्रुत (ज्ञान) से युक्त आत्मा ससार की वासनाओ मे भटक जाने पर भी सहजतया संभल जाता है, और आत्म स्वरूप को प्राप्त कर लेता है

३ सूत्र का तीसरा अर्थ है-सुप्त ! सूत्र—वह है जो शब्दो की शय्या पर भावो की गहराई लिए सोया रहता है। सोये हुए व्यक्ति को जगाने पर वह प्रबुद्ध होकर कार्यरत हो जाता है, उसी प्रकार सुप्त भाव व अर्थ जिसमे छिपा रहता है, और जिसे चिंतन के द्वारा जागृत करके अनेक प्रकार का विज्ञान प्राप्त किया जा सके वह है सूत्र !

सूत्र के तीनो अर्थों का सामजस्य करके जीवन को आलोकमय वनाना चाहिए.
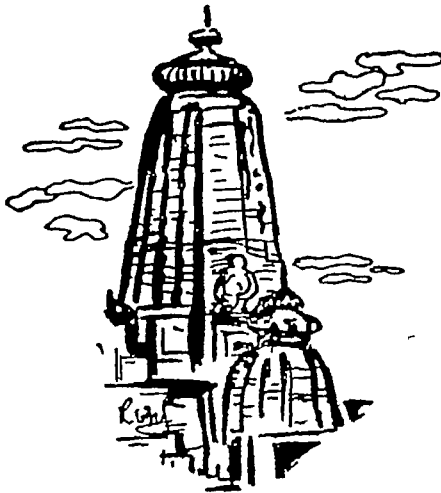
अनुभूति के आलोक में

अ
न्त
र
की
अं
ग
ड़ा
इ
यां

❋

अनुभूति का आलोक जब मन मे जागृत होता है तो अन्त - करण की सुप्त शक्तिया अगडाई भर कर जाग उठती है, प्राणो मे उत्साह का सचार होने लगता है और जीवन स्पदित हो उठता है. इसी अगडाई के आगुठन मे धैर्य, विवेक, सहिष्णुता, साहस, उदारता, सत्यदृष्टि, समन्वयवुद्धि सेवा समर्पण रूप, विविधज्योति किरणें स्फुरित होने लगती हैं। ये ही अन्तर की अगडाईया जीवन का स्वर्णिम सुहामित विभात हैं.

जीवन :

जोवन में तीनो अवस्थाओ का एक साथ प्रयोग करना यही तो श्रेष्ठ जीवन की कला है.

आचरण मे वालक के समान स्फूर्ति और निश्छलता ! सत्य का प्रयोग करने मे युवक के समान साहस और दृढता ! ज्ञान का उपयोग करने मे वृद्ध के समान दीर्घचितन एव अवलोकन .—इन सब का समवेत रूप ही तो जीवन है.

परिपूर्ण जीवन :

सरसो के खिलते हुए पीले फूलो को देखकर मेरा मन मुग्ध हो उठा—ऐसा सर्वगुण सपन्न फूल मैंने दूसरा नही देखा—जिसमे दिल लुभावनी सुन्दरता भी है, हृदय को प्रफुल्ल करने वाली सुवास भी है और है स्निग्ध-स्नेहशीलता !

मैंने अनुभव किया—जिस जीवन मे हृदय को मोहने वाली आत्मिक-सुन्दरता हो, मन को प्रफुल्ल करने वाली सद्‌गुणो की सुवास भी हो, और जन-मन को तृप्त करने वाली स्नेहशीलता भी—वह जीवन वस्तुत ही एक परिपूर्ण जीवन कहला सकता है

प्रथम चरण :

साधना प्रेमी एक मित्र ने पूछा—ध्यान का अभ्यास करते समय मन स्थिर होने की अपेक्षा चारो ओर दौडने लगता है ऐसा लगता है—साँप की पूँछ पर पैर रख दिया हो, या सोते हुए सिंह को जगाकर ललकार दिया हो. यह क्या विचित्र स्थिति है ?

मैंने समाधान दिया—घबराइए नही ! यह मन की स्थिरता का प्रथम कदम है आपने अनुभव किया होगा—कूडे के जमे हुए ढेर में उतनी दुर्गन्ध नही आती, जितनी साफ करने के लिए खोदने पर चारो ओर बिखर जाती है. पेट मे सचित मल उतना कष्ट नही देता, किन्तु विरेचन आदि के द्वारा मल शोधन करते समय वायु कुपित होकर अधिक कष्ट देता है.

सोचिए—वह उभार खाई हुई दुर्गन्ध और उठी हुई पीडा क्या है ? शोधन का प्रथम चरण ! उसी प्रकार अभ्यास दशा मे मन का बिखराव एकाग्रता की ओर बढने वाला प्रथम चरण है !

भाप . मन :

इजिन मे जो स्थान वाष्प एव तैल का है वही स्थान जीवन मे मन का है.

सचालक सदा सावधान रहता है कि वाष्प और तैल का कही दुरुपयोग न हो, क्या इसी प्रकार आप भी मन की गति के बारे में सदा सावधान रहते हैं ?

वाष्प का दुरुपयोग इजिन के लिए खतरनाक है, मन का दुरुपयोग जीवन के लिए खतरनाक है.

थकावट : श्रम से, या क्रोध से ?

काम, क्रोध, भय आदि विकारो का आवेग मनोबल को तो नष्ट करता ही है, किन्तु शरीर बल को भी बहुत अधिक क्षीण करता है. एक स्वास्थ्य चिकित्सक के मतानुसार दस घंटा का परिश्रम हमारी शक्ति को उतना नष्ट नही करता, जितना कि काम, क्रोध और भय का आवेग दस मिनट मे शक्ति को क्षीण कर डालता है

यह तो हमारे अनुभव का विषय है कि दिनभर श्रम करने पर भी मनुष्य प्रफुल्लित रह सकता है, किन्तु क्षण-भर क्रोध करने के बाद उसका चेहरा मलिन और सुस्त पड जाता है.

श्रम से उतनी थकावट नही आती, जितनी क्रोध करने से और भय खाने से आती है.

समर्पण

नये पत्र, पुष्प एवं फल प्राप्त करने के लिए वृक्ष को पतझड में पहले अपना सर्वस्व लुटाना पडता है.

जीवन मे नया उल्लास एवं आनन्द प्राप्त करने के लिए मानव को पहले समर्पण करना पड़ता है

जल की एक बूद सागर में समर्पित होकर असीम बन जाती है. छोटा-सा रजकरण पृथ्वी में सर्मपित होकर विराट बन जाता है, तो क्या फिर क्षुद्र देह धारी मानव भगवान के चरणो मे सर्मपित होकर अक्षय-अनन्त नही बनेगा ?

स्थिर मन :

बहते हुए पानी मे एक छोटा-सा कंकर भी डाला जाए तो तरंगें उठेगी, भवर गिरेगे, और एक किनारे से दूसरे किनारे तक पानी, आलोड़ित हो उठेगा ! किन्तु जमे हुए पानी मे कंकर पत्थर की चोट तरग पैदा नही कर सकती,

मन रूपी पानी में जब तक चचलता है, वाहरी विभावो के कारण तरंगे उठेंगी, विकल्पो के भँवर उठेगे, और मानस तट आन्दोलित होते रहेगे, किन्तु ध्यान की परिपक्वता में जब मन स्थिर हो जायेगा तो विकल्पो की चोट उस पर कुछ भी असर नही कर सकेगी.

सफलता कब ?

एक जिज्ञासु ने पूछा—हम साधना करते है, उसमें सफलता कब और कितनी मिलेगी ?

मैंने उत्तर दिया—पहले तो साधक के मन मे यह प्रश्न उठना ही नही चाहिए, उसे तो विश्वासपूर्वक साधना करते जाना चाहिए. फिर भी आपने पूछा है तो उत्तर है—आपके मन मे उत्साह और विश्वास का बल जितने प्रमाण मे होगा, उसी अनुपात से सफलता मिल पायेगी !

सफलता का मूलमत्र :

एक जिज्ञासु ने पूछा—सफलता का मूल मत्र क्या है ?

मैंने उत्तर दिया—ध्येय के प्रति एकाग्रता !

और एकाग्रता कैसे प्राप्त करे—पुन प्रश्न उठा.

ध्येय के प्रति सम्पूर्ण निष्ठा से—मैंने समाधान दिया

शास्त्रो की दुर्वीन .

एक बालक ने बहुत बढिया दुर्वीन आँखो पर लगाई और आँखें बन्द करके देखने का प्रयत्न करने लगा कुछ भी दिखाई नही देने पर वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा—"दुर्वीन खराब है, कुछ भी दिखाई नही देता."

क्या आज विवेक की आँखे बन्द करके शास्त्रो की दुर्वीन से इसी प्रकार देखने का प्रयत्न नही हो रहा है ? गहराई से सोचने का प्रश्न है.

सूली : सिहासन :

सेठ सुदर्शन को जब सूली पर चढाया गया तो वह मुस्करा रहा

था और अपने विरोधियो की भी कल्याण—कामना कर रहा था ! उसकी सूली सिंहासन वनगई !

हम भी जीवन की इतनी विकट परिस्थिति में भी मुस्कराना और प्रसन्न रहना सीख लें तो क्या हमारे सकटो की सूली सुख का सिंहा न नही वन सकती ?

क्यो नही ? कलियुग में भी वह चमत्कार हो सकता है सिर्फ वह अडिग निष्ठा चाहिए.

विचारो की विद्युत् :

विद्युत् केवल जल मे नही, किन्तु मनुष्य के मस्तिष्क (विचारो) मे भी भरी हुई है.

जल में विद्युत् उत्पन्न करके उसके नये-नये अद्भुत प्रयोग करना मनुष्य ने सीख लिया है, परन्तु विचारो की विद्युत् का प्रयोग करने का तरीका अभी तक उसने नही सीखा है.

जिस दिन विचारो की विद्युत् का प्रयोग मनुष्य कर सकेगा, उस दिन उसके जीवन में आलोक जगमगा उठेगा.

बुढापे मे आसक्ति :

कभी-कभी लगता है—भलाई से बुराई अधिक शक्तिशाली होती है सदगुण जल्दी दुर्वल पड जाते है, पर दुर्गुण अतिम दम तक दम पकडे रहते हैं

बुढापे मे उत्साह और वल क्षीण हो जाता है, पर आसक्ति कहाँ क्षीण होती है ? शरीर में कुछ करने की ताकत नही रहती, पर मन में तो अपार इच्छाएँ मचलती रहती है. मौत सिरहाने पर खड़ी रहती

है, पर जीने की लालसा तो द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ती ही जाती है.

उपदेश का समय :

आँधी और तूफान के सामने कोई व्यक्ति मशाल लेकर मार्ग दिखाना चाहे तो वह मार्ग दिखाने की बजाय उसे ही जला डालेगी.

क्रुद्ध और कामाकुल व्यक्ति के सामने यदि कोई सीधा उपदेश देने चले तो वह उपदेश कल्याण की बजाय उपदेष्टा को ही नुकसान-दायी सिद्ध होता है.

अच्छी मृत्यु या अच्छा जीवन ! :

एक भक्त ने पूछा—महाराज ! यह बतलाइए कि अच्छी मौत कैसे आए ?

मैंने भक्त को आश्चर्य के साथ देखा और कहा— यह क्यो नही पूछते कि अच्छा जीवन कैसे जीएँ ? यदि अच्छे ढग से जीना आ गया तो मौत स्वय अच्छी आयेगी उसकी चिन्ता क्या है—

"जिसे जीना नहीं आया, उसे मरना नहीं आया !"

परीक्षा मे अच्छी श्रेणी प्राप्त करने के लिए परीक्षा देने का तरीका पूछने की जरूरत नही है, किन्तु पढने का तरीका आ गया, तो परीक्षा देने का तरीका भी आ गया

जिसे अच्छा जीवन जीना आ गया, उसे अच्छा मरना भी आ गया ?

मुँह को नही, मन को देखिए :

दर्पण मे मुँह देखना एक आदत बन गई है, लोग दिन मे कई बार

दर्पण में मुँह देखते हैं. पर, क्या देखते है, कुछ समझ मे नही आया, केवल धब्बे और मिट्टी ?

मुँह स्वय एक दर्पण है, जिसमे मन की छवि प्रतिविम्बित होती रहती है. क्या मुँह के दर्पण में मन को देखने का प्रयत्न किसी ने किया ? उस पर विकार व वासना के कितने दाग लगे पड़ है, आसक्ति की कितनी धूल जमी पड़ी है किसी की नजर मे आया ? काश ! मेरे मित्र काँच के दर्पण मे मुँह देखने से पहले, मुँह के दर्पण मे मन को देखने का प्रयत्न करते !

उधार रोशनी :

मैंने नक्षत्रो से पूछा—तुम अँधेरी रात में टिमटिमाते बड़े सुहावने लगते हो, पर दिन होते ही कहाँ चले जाते हो ?

नक्षत्रो ने शरमाते हुए जवाब दिया—"उधार ली हुई रोशनी लौटाने को"

मैं चिन्तन में डूब गया क्या अन्धकार पाकर चमकने वालो मे अपनी रोशनी नही होती ? क्या अवसर पाकर प्रभुत्व जमाने वालो मे अपना प्रभाव नही होता ?

जीवन का सदेश ·

मैंने पानी पर तैरते वुलबुलो से पूछा—तुम जब पानी पर थिरकते हुए चलते हो, तो वडे सुहावने लगते हो, पर इतने जल्दी जल मे विलीन क्यो हो जाते हो ?

तुम्हे जीवन का सदेश सुनाने के लिए—"जल मे विलीन होते वुल-वुले ने कहा.

अस्थिरता : मोहकता :

प्रात काल मे घास पर चमकती हुई ओस कणो को देखकर मैंने मन ही मन कहा—"कितनी चमक और मोहकता है ?"

किन्तु दूसरे ही क्षण उन्हे सिमटते देखा तो सोचा—कितनी अस्थिरता है ?"

और तभी मेरे मन में जैसे एक प्रतिध्वनि उठी—"अस्थिरता है, इसीलिए मोहकता है. मनुष्य सदा सदा से अस्थिर के प्रति इसी प्रकार ललचाता आया है."

शबनम .

कमल की पखुडियो पर मोती-सी चमकती हुई शबनम (ओस कण) को देखकर मनुष्य झूम उठा—"तुम्हारी सुंदरता पर मैं मुग्ध हूँ" और उसने शबनम को छूने के लिए हाथ बढाया

मिट्टी मे विलीन होती हुई शबनम ने एक गहरी सास ली—"मनुष्य की ललचाई आँखो ने प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य को इसी प्रकार नष्ट किया है"

प्रेम की शक्ति :

प्रेम, उदारता और सद्भावना की शक्ति किसी भी सम्राट की सैनिक शक्ति से अधिक बलशाली है और कुबेर के खजाने से भी अधिक वैभव सपन्न है

बादशाह हसन से किसी ने पूछा—पहले आपके पास कुछ भी साधन नही थे, न सेना थी, न धन था न और कुछ भी, फिर आप बादशाह कैसे बन गये ?

हसन ने गभीरता पूर्वक कहा—मित्रो के प्रति प्रेम, शत्रुओ के प्रति

उदारता और मानव मात्र के प्रति सद्भाव-मेरी सवसे वडी संपत्ति है. इसी सम्पत्ति के वल पर मैं साधारण सैनिक से बादशाह बन सका.

शव्द और भावना

शव्द शक्ति, का अपना अर्थ एवं शक्ति है, किन्तु यदि वह भावना से शून्य है तो उसका कुछ भी महत्व नही.

यदि भावना शुद्ध और यथार्थ है तो शव्द का सही अर्थ न आने पर भी शव्द शक्ति का चमत्कार स्वयं व्यक्त हो ही जाता है.

जैन साहित्य मे एक कहानी आती है, एक आचार्य का एक मद बुद्धि शिष्य गुरु के पास आया, और बोला—"गुरुदेव, मे बहुत ही मद बुद्धि हूँ, मेरा कल्याण हो, ऐसा कुछ तत्त्वज्ञान दीजिए."

गुरु ने शिष्य की योग्यता देखकर एक पद दिया—"मा रुप ! मा तुष !" शिष्य उसे रटने लगा, वह उसे भी भूल गया और केवल 'मासतुप' रटता रहा

गुरु ने जो सूत्र दिया उसका अर्थ था, न किसी पर द्वेष करो–मा रुष ! और न किसी पर मोह-राग करो–मा तुष ! किन्तु शिष्य ने सूत्र को शव्दश नही समझा. फिर भी गुरु के वचन पर उसे अटल आस्था थी और भावना वहुत ही सरल एवं विशुद्ध ! फलत. वह सूत्र को शव्द रूप में गलत रटता हुआ भी भावना रूप पर बहुत ही विशुद्ध एवं उच्चकोटि का चिंतन करने लगा—उसने मासतुप के अर्थ पर चिंतन प्रारम्भ किया जैसे उड़द और उसका छिलका भिन्न है उसी प्रकार मैं (आत्मा) और मेरा शरीर भिन्न हैं काला छिलका दूर होने पर भीतर मे श्वेत उड़द निकाल आता है वैसे ही काले विकारो के दूर होने पर भीतर से आत्मा का निर्मल एव विशुद्ध स्वरूप प्रकट हो जाता है

मद बुद्धि शिष्य इस विशुद्ध अर्थ का चिंतन करते-करते केवलज्ञान की उस परम निर्मल ज्योति को प्राप्त कर गया जो समस्त संसार को आलोक दिखाने वाली है.

यह है भावना का चमत्कार !

कर्म मे दृढता :

मन में जब दृढता नही है, तो कर्म मे दृढता कैसे आयेगी ?
ढीले हाथ से फैका हुआ बाण और शिथिल मन से किया गया कर्म कभी भी अपने निशाने पर नही पहुँच सकते.

धरती का देवता

सर्वस्व नप्ट हो जाने पर भी जिसके मन की उदारता नष्ट नही हुई.
आपत्तियो के तूफान मचलने पर भी जिसके धैर्य की ज्योति क्षीण नही पडी
मृत्यु का अट्टहास सुनने पर भी जिसके जीवन का मधुर हास विलीन नही हुआ
वही है इस धरती का देवता ! उसे शत शत प्रणाम !

सुन्दरता की रक्षा :

मैंने एक दिन काँटे से पूछा—फूल को प्रतिदिन खिलते हुए देखकर भी तुम सूखे रहते हो, क्या तुम्हारे जीवन मे इसकी महक और खुशी से काई उल्लास नही जगता ?

काँटा आँखे तरेरते हुए कह रहा था—इस सुन्दरता और सुषमा की रक्षा की चिंता तो मुझे ही है

बुभुक्षा :

कुम्हार के पैरो से रोंदे जाने पर मिट्टी रो पडी—"तुम मुझे कितना कष्ट दे रहे हो, पैरो से रोंदना, फिर चाक पर चढकर नाचना, और फिर अगारो की शय्या पर चुपचाप सोए रहना—सी ! सी ! कितना कष्ट !!"

"भोली मिट्टी ! तुम्हारा मूल्य भी तो बढ़ेगा, सन्मान भी बढ़ेगा, तुम मिट्टी से घड़ा बनोगी, कुलनारियाँ तुम्हे सिर पर रखकर पनघट तक घुमाने को ले जायेगी। विवाह मंडपो मे तुम्हे सजाया जायेगा, घबराओ नही ! कष्ट सहने पर ही तो यश मिलता है"

सुनहले भविष्य की आशाओ से मिट्टी का हृदय थिरक उठा और हँस-हँस कर वह सब कष्टो को झेलने लगी

'कीर्ति, यश, सम्मान की बुभुक्षा क्या हर मिट्टी को इसी प्रकार जला-जला कर भी चुपचाप सहते जाने का आश्वासन नही देती'—मेरे मन ने प्रश्न किया ?

काम : कामना :

काम करते हुए भी कामना नही करना सचमुच एक जादू है.

काम (कर्म-पुरुषार्थ) जीवन को तेजस्वी बनाता है, और कामना उसे मलिन-धूमिल करके रख देती है.

जैसी दृष्टि :

पर्वत की चोटी पर खड़ा होकर जो मनुष्य तलहटी मे खड़े मनुष्यो को कुत्ते-बिल्ली की तरह क्षुद्र देखकर हँसता है, उसे विश्वास करना चाहिए कि तलहटी वालो की नजर मे भी वह कौवे और चील की तरह क्षुद्र ही दिखाई पड़ता है.

जो जिस दृष्टि से जगत को देखता है. जगत उसी दृष्टि से उसका अंकन किया करता है

क्षुद्र ही प्रदर्शन करता है :

मैंने देखा—आधा घडा छलकता जा रहा है, और पूरा घडा शिर पर यो शांत धरा है जैसे उसमे कुछ भी नही हो

मैंने देखा—छोटी-सी तलैया में मेढक टर्र-टर्र करके शोर मचाता हुआ धरती आकाश को एक कर रहा है, किन्तु महासागर के वक्ष पर योजनो लबे महामत्स्य शाति के साथ चुपचाप पडे है

मैंने देखा—कांसे का बर्तन थोडी-सी चोट लगते ही बडी जोर से टन-टना उठता है, किन्तु सोने पर चोट पडते हुए भी वह चुपचाप हँस रहा है

मैंने देखा—भिखारी को दो पैसे मिलने पर भो वह ऐसे उछलता है जैसे कारूँ का खजाना हाथ लग गया हो, किन्तु श्रीमतो के पास करोडो रुपये प्रतिदिन आते-जाते रहने पर भी दूसरो को पता तक नही चलता

मैंने अनुभव किया—जो क्षुद्र है वह अधिक कोलाहल एव प्रदर्शन करता है, जो महान है, वह सदा शात और चुपचाप रहता है.

आलोचना

आलोचना—भूलो के परिष्कार के लिए की जाती है, भूलो के प्रचार के लिए नही.

जो आलोचक केवल भूलो का उद्घाटन करना जानता है, उनका सुधार करना नही, वह उस शल्य चिकित्सक के समान है जो मनुष्य के शरीर को केवल काट कर रखना जानता है, उसे ठीक करके पुन. जोडना नही जानता. ऐसा शल्यचिकित्सक वस्तुत चिकित्सक नही, किन्तु जल्लाद है और ऐसा आलोचक वस्तुत. आलोचक नही, निंदक है

आलोचना से वस्तु के भीतर छिपी हुई शिथिलता, शल्य और खटक दूर की जा सकती है, किन्तु तभी, जब आलोचक की दृष्टि भूल को सुधारने की हो, न कि गुण-एव दोष को, चोर-साहूकार को एक ही कठघरे मे खड़े करके जलील करने की !

जीवन-दृष्टि :

खिले हुए गुलाब के पौधे को राजनीतिज्ञ ने देखकर कहा—जीवन की पद्धति यही है कि अपने अस्तित्त्व की रक्षा के लिए चारो ओर काँटे खड़े करो, और तोड़ने वाले के हाथ को बीध डालो !

खिले हुए गुलाव के पौधे को सत ने देखकर कहा—जीवन की पद्धति यही है कि संसार को विना माँगे ही सौरभ देते रहो, और तोड़ने वाले को भी अपनी मधुर गध से मुग्ध कर दो.

मैंने अनुभव किया, एक ही वस्तु से अलग-अलग जीवनदृष्टि प्राप्त की जा सकती है.

दु.ख सुख :

दु.ख मनुष्य के घर पर अतिथि बन कर आया 'अतिथि देवो भव' के पुजारी मानव ने उसका स्वागत तो नही किया, पर घर आये अतिथि को दुत्कारा भी नही, जैसे तेसे उदासीन भाव से कुछ दिन निकाले.

कुछ दिन बाद दु ख विदा होने लगा—जाते-जाते उसने मनुष्य को एक बद प्रेमोपहार दिया मनुष्य ने खोलकर देखा उसमे तीन चीजें थी – धैर्य ! साहस ! और समझदारी !

कुछ दिन वाद सुख भी अतिथि बन कर आया. मनुष्य ने उसका

प्रेम पूर्वक स्वागत किया. उसके चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया

एक दिन सुख भी विदा होने लगा—जाते जाते उसने भी एक वंद प्रेमोपहार दिया मनुष्य ने खोलकर देखा—उसमें तीन चीजें थी–चचलता, भीरुता और जड़ता

चलते रहो :

मैने देखा—एक ओर सरिता की कल-कल करती निर्मल धारा में स्वच्छ एव शीतल पानी वह रहा है दूसरी ओर एक गर्त मे रुका हुआ पानी दुर्गन्ध उछाल रहा है, मच्छर भिनभिना रहे हैं.

मैंने अनुभव किया—चलते रहना, जीवन है, रुक जाना मृत्यु है. जीवन की पवित्रता एवं उपादेयता बनाए रखने के लिए ही भारतीय सस्कृति का यह स्वर मुखरित हुआ है—'चरैवेति चरैवेति' चलते रहो, निरतर चलते रहो !

समझौता :

एक वार सुख-दु.ख मे विग्रह छिड गया !

सुख ने कहा—"मनुष्य मुझे चाहता है, मैं उसे अपने अधिकार मे रखूँगा"

दुख नें कहा· "मै मनुष्य का उपकार करता हूँ, वह मेरे अधिकार में रहेगा."

दोनो का विग्रह जब भयंकर बनगया, तो प्रकृति ने मध्यस्थता करके एक समझौता करा दिया !

प्रकृति के उस समझौते के अनुसार अब प्रत्येक सुख के अंत मे दु ख आता है, और प्रत्येक दु·ख के अन्त में सुख !

परोपदेश :

मैंने देखा—अपने चारो ओर प्रकाश बिखेर कर अधकार से लडने की वात करने वाले दीपक के पैरो के नीचे अंधेरा बैठा है

मैंने देखा—पड़ौसी की गन्दी छत को साफ करने की वात कहने वाले महाशय के घर की सीढियां कितनी गदी है ?

मैंने अनुभव किया—इस ससार में परोपदेश की कुशलता दिखाने वाले यदि अपना ही घर देख लेते ?

अभिमान का पर्दा :

आँख के ऊपर यदि छोटा-सा पर्दा भी कर दिया जाए तो, हिमालय सा पहाड भी दिखलाई नही पड़ता

वुद्धि के ऊपर यदि अभिमान का छोटा-सा भी पर्दा लग गया तो, पहाड जितने सद्गुण भी दिखलाई नही पड़ेगे

धुआ और वादल :

धुआँ धरती से आकाश की ओर उडा जा रहा था और वादल आकाश से धरती पर झुकता आ रहा था मार्ग मे दोनो की मुलाकात हो गई धुए ने पूछा—कहाँ जा रहे हो ?

'धरती पर'—वादल ने कहा

"अरे ! यह क्या सूझी ? वहाँ तो बडी आग जल रही है, भयंकर उत्ताप से दम घुटा जा रहा है ?"

वादल मुस्कराया—मेरे पास आर्द्रता का जादू है जिससे धरती का समस्त उत्ताप शांत हो जाएगा !

धुएँ ने कनखियो से देखा, और खुले आकाश मे इधर उधर भटकने लग गया.

वादल धरती पर वरसा, धरती ने वडे प्यार से उसे अपनी गोद मे बिठा लिया !

मैने देखा—जो कष्टो से घवरा कर भागते हैं, वे धुएँ की तरह तिरस्कारपूर्वक भटकते रहते है जो कष्ट मिटाने के लिए निछावर हो जाते है, उनका वादल की तरह सर्वत्र स्वागत होता है.

एक दिन :

एक दिन धरती ने आकाश की ओर देखा, नील गगन मे चमचमाते असख्य तारो की शोभा देख कर वह विस्मय-विमुग्ध हो गई.

एक दिन आकाश ने धरती पर दृष्टि डाली, रंग-विरगे फूलो की सुषमा देखकर आश्चर्य मे डूब गया

एक दिन भिखारी ने सम्राट को लावण्यमयी रमणियो के बीच घिरा विविध मिष्टान्न खाते देख कर उसके भाग्य का गौरव गाया

एक दिन सम्राट ने किसी भिखारी को सडक के किनारे निर्भय और निश्चित सोए देख कर ऐसे मस्त जीवन की कामना की

आत्मविश्वास

किसान ने बीज को भूमि मे सुलाकर ऊपर मिट्टी डाल दी

बीज निराश हो गया—"अब कभी भी वह ससार का दर्शन नही कर सकेगा, उसे जीवित-समाधि जो दे दी गई है"

भूमि की उष्मा और जल की आर्द्रता ने निराश बीज के जीवन को थपथपाया, उसका आत्म-विश्वास जगा और अवसर पाकर एक दिन धरती के वाहर सिर ऊँचा उठाए खडा होगया

मैंने देखा—"विपत्ति में भी जिनका आत्मविश्वास जीवित रहता है, वे मृत्यु की भूमि पर भी जीवन का अकुर पैदा कर सकते है"

सुख का साथी :

मैं जब प्रकाश में खडा हुआ, तो छाया मेरे चरणो मे लिपट-लिपट कर सदा साथ रहने का वादा करने लगी.

मैं जब अन्धकार से घिर गया, तो मैंने देखा मेरे साथ कोई नही था, मेरी परछाईं भी मुझे धोखा दे गई !

मैंने जगत की यथार्थता का अनुभव किया—जगत् सुख मे साथी होता है, किन्तु वही दु ख मे किनारा कर जाता है.

जन्म और मृत्यु .

जन्म और मृत्यु मे एक दिन विवाद छिड़ गया.

जन्म ने कहा—"मै जब आता हूँ तो ससार हर्ष से नाच उठता है, किन्तु मृत्यु को देखकर सर्वत्र शोक छा जाता है, इसलिए मैं बडा हूँ."

मृत्यु ने कहा—"यदि मे नही आती तो ससार मे जन्म को कोई स्थान नही मिल पाता ! जन्म के आनन्द का मूल तो मैं ही हूँ इसलिए मैं बडी हूँ"

प्रकृति ने कहा—"तुम दोनो अपनी श्रेष्ठता का प्रमाण दो"

मृत्यु ने अपनी गति रोक दी और जन्म की गति अत्यन्त तीव्र हो गई. जनसंख्या बढने लगी, भूख, गरीबी, रोग और बेकारी से जन-जीवन संत्रस्त हो गया

जन्म निरोध के विविध उपाय किए जाने लगे, रोग, भूख और बेकारी से परेशान लोग आत्महत्या करने लगे.

प्रकृति ने दोनों मे समझौता कराया—तुम दोनो ही समान रूप से सृष्टि के नियामक हो, दोनो की सतुलित गति ही जगत के सुख

तथा हर्ष का साधन है, अत जन्म, तुम अपनी गति को धीमी करो ! मृत्यु, तुम अपनी गति को नियम पूर्वक चालू रखो—यही सृष्टि के सुख का मूल है

झुकना पडेगा .

नदी में मधुर पानी की निर्मल धारा बह रही है, घडा भी हाथ मे है, किन्तु जल भरने के लिए झुकना पडेगा, तभी घड़े मे जल भर के आयेगा

गुरु के ज्ञान की पवित्र धारा वह रही है, बुद्धि भी तुम्हारे पास है, किन्तु ज्ञान पाने के लिए विनय करना पडेगा, तभी बुद्धि के घट मे ज्ञान का जल भर सकेगा

आकाक्षा .

मैंने बू द से पूछा—"तुम आकाश से गिर कर झरने में क्यो मिल जाती हो ?"

बू द ने धीमे से कहा—"विराट बनने के लिए !"

मैंने झरने से पूछा—"तुम पहाड से उतर कर नदी में क्यो जा मिलते हो ?"

झरने ने खिलखिला कर कहा—"विराट बनने के लिए."

मैंने नदी से पूछा—'तुम धरती पर बहती-बहती खारे सागर मे जाकर क्यो मिल जाती हो ?'

नदी ने सगीत के लहजे मे कहा—"विराट वनने के लिए ?"

मैंने सागर से पूछा—"तुम अपनी अनन्त जल राशि को वादल बनाकर आकाश मे क्यो उड़ा देते हो ?"

एक गभीर हास्य के साथ सागर ने कहा—

"प्यासी धरती को तृप्त करने के लिए."

मैंने अनुभव किया—"क्षुद्र की आकाक्षा है विराट् वनने की और विराट् की आकांक्षा है क्षुद्र को परितृप्त करने की."

मन का वन्द कमरा :

मैंने एक ऐसा मकान देखा—जिसमे चारो ओर दीवारे खडी है, सब खिड़कियाँ वन्द है, दरवाजो पर ताले लगे हैं. हवा और प्रकाश के लिए कोई मार्ग नही है.

मैंने देखा—वाहर प्रकाश जगमगा रहा है, किंतु भीतर अन्धकार फैला हुआ है बाहर मस्त हवा चल रही है, किन्तु भीतर सडाद और घुटन भरी है

मैंने अनुभव किया—मनुष्य जब मन के कमरे के चारो ओर आग्रह की दीवार खडी कर लेता है, बुद्धि की खिडकियाँ बन्द करके अनुभव के दरवाजों पर ताले लगा देता है तो सन्तो की वाणी का प्राण वायु और ग्रन्थों के चिन्तन का शाश्वत प्रकाश उसके भीतर नही जा सकता ! अज्ञान का अन्धकार वहाँ भरा रहता है, कुंठाओ की सडांद से वह भीतर ही भीतर घुटता जाता है

अवगुण ही नही, गुण भी है :

मैंने देखा इस संसार में गाँव-गाँव में केवल कूडे-कर्कट के ढेर ही नही सड़ रहे हैं, किन्तु फूलों के उपवन भी महक रहे हैं

कीडो से कुलबुलाती केवल गदी नालियाँ ही नही हैं, किन्तु निर्मल जल की पवित्र धाराएँ भी वह रही है.

मैंने अनुभव किया—इस ससार मे मानव हृदय मे केवल वासना, दंभ और अहकार की वीभत्स मूर्तियाँ ही नही बैठी हैं, किन्तु निस्पृहता,

सरलता और विनम्रता की सुन्दर देवप्रतिमा भी विराजमान है.

सिद्धान्त की विडम्बना :

अद्व`तवादी चिंतन ने माया को असत्य और ब्रह्म को सत्य माना है किन्तु मैंने देखा—अद्वैत का प्रचार करने वाले साधक माया से प्रेम कर रहे है, और ब्रह्म से दूर हटते जा रहे हैं.

अनेकातवादी चिंतन ने वस्तु को अनन्तधर्मात्मक मानकर सत्य को अनेक पहलुओ से समझने का उपदेश किया है.

किन्तु मैने देखा—अनेकात की दुहाई देने वाले साधक सत्य के एक ही पहलू का आग्रह करके अन्य पहलुओ का निरादर करते हुए सघर्ष कर रहे है.

मैने अनुभव किया—व्यक्ति की दुर्बलता सिद्धान्त की विडम्बना कर रही है.

अहकार टूट गया

उषा मुस्कराई, गुलाब की टहनी पर एक कलो चटकी, और फूल बन कर उठी ! अपने परिपार्श्व मे विश्व का विरल सौन्दर्य बिखरा देखकर प्रसन्नता से झूमने लगी कि तभी सामने पडे एक काले अनघड़ पत्थर पर उसकी दृष्टि पड़ी । कली ने तिरस्कारपूर्वक देखा और घृणा से आँखे दूसरी दिशा मे फिर गई—"यह भी क्या जीवन है ? न रूप ! न गध ! न सुषमा ! न सरसता !"

पत्थर मौन था. एक मूर्ति-शिल्पी ने उसे उठाया, और उसे सुन्दर देव प्रतिमा गढ कर मदिर मे प्रतिष्ठित कर दी ! पुजारी ने उसी फूल को तोड कर देव प्रतिमा के चरणो मे समर्पित किया. मूर्ति मुस्कराई —"यह भी क्या जीवन है ? जो कल दूसरो का उपहास करके घृणा

से आँखे फेर रहा था, वही आज चरणों मे पडा है." फूल का अहकार चूर-चूर हो रहा था, भीतर ही भीतर टूट कर उसकी पखुड़ियाँ बिखर गईं.

सघर्ष करने पर भी

मैंने देखा—दियासलाई रगड खाकर प्रज्वलित हो उठती है. चदन घिसने पर भीनी-भीनी सौरभ देता है, और अगरवत्ती जलने पर वातावरण मे महक भर देती है.

मैंने अनुभव किया—विपत्तियो से संघर्ष करने पर ही अनुभव की ज्योति मिलती है. सकटो का सामना करने पर ही यश की सौरभ फैलती है, और परहित समर्पित होने पर ही विश्व में प्रेम की महक फूटती है.

दृष्टा मुख्य है :

कोई भी वस्तु, कोई भी सिद्धान्त न एकांत बुरा होता है और न एकांत भला ही। वस्तुत: बुराई और भलाई का आधार वस्तु नही, किन्तु दृष्टा की भावना होती है

यदि दृष्टा की अन्तर स्फुरणा जागृत है, तो विद्युत सवाहक तार की भाँति केवल एक खटका दबाने की जरूरत है, सघन अधकार में भी प्रकाश किरणें जगमगा उठेगी.

क्या आपने नही सुना, जो शीशमहल सम्राटो के भोग-विलास की क्रीडा-स्थली बनता है, वही शीशमहल चक्रवर्ती भरत के कैवल्य का परमतीर्थ बन गया.

जो वृद्ध, रोगी और मृत कलेवर पारिवारिक जनो के तिरस्कार, घृणा एव शोक का निमित्त बना हुआ था, उसी माध्यम को पाकर शाक्य-

पुत्र बुद्ध के अन्त करण मे वैराग्य की लहरे तरगित होने लग गई.

सशय की अग्नि :

मन के वन मे जब सशय की अग्नि भड़क उठती है, तो विश्वासो के वृक्ष लडखडा कर गिरने लगते है.

प्रेम की लताएँ जल कर राख होने लगती है, और हृदय, भय, अनिश्चितता एव अविश्वास के धुएँ से घुटने लग जाता है.

सदा मधुर ·

ईख से मैंने पूछा—तुम्हारे में ऐसी क्या विशेषता है, जो बार-बार महापुरुषो के लिए तुम्हारी उपमा दी जाती है.

अव्यक्त स्वर मे ईख ने उत्तर दिया—मुझ मे दो गुण है—

१. कडवी और गदी खाद से भी मैं मधुरता ग्रहण कर लेता हूँ.

२. और यंत्र मे पीलने वाले को भी मधुर-रस प्रदान करता हूँ

मनुष्य कितना नीरस है ? :

मैंने देखा—मनुष्य के सिवाय सृष्टि का प्रत्येक प्राणी नीरस को सरस बनाने की कला मे दक्ष है.

समुद्र के खारे जल को बादल मधुर बनाकर बरसाते हैं.

पृथ्वी की गन्दी वस्तुओ से वनस्पति मधुर रस प्रदान करती है.

सूखा घास-पात खाकर गाय-भैंस दुग्ध की मधुर धारा बहाती है,

और मनुष्य·· ? चारो ओर सरसता के बीच डूबा रहकर भी कितना नीरस ! कितना कडवा बना हुआ है ?

क्या जरूरी है ?

यदि फूल वन कर किसी के हृदय को सुरभित बनाने की क्षमता नही है, तो क्या जरूरी है कि पथ के काँटे वनकर किसी की पीड़ा को जगाया जाए !

यदि सितारे वनकर चमकने की योग्यता नही है, तो क्या जरूरी है कि राहू वनकर अन्धकार फैलाया जाए ?

यदि देवता वनकर किसी को पूजा नही पा सकते हो, तो क्या जरूरी है कि दानव वनकर ससार को सत्रस्त किया जाए ?

प्रकाशमय जीवन :

जगमगाते नन्हे-से दीप को उद्धत पवन ने कहा—"जलने का कष्ट क्यो करते हो, तुम्हारा जीवन तो दो क्षण का है."

दीपक ने सौम्यता से विहँस कर उत्तर दिया—"वहन ! हजार वर्ष के अन्धकारमय जीवन की अपेक्षा दो क्षण का प्रकाशमय जीवन क्या अधिक महत्त्वपूर्ण नही है ? समय की परवाह मुझे नही, सिर्फ ज्योति वनकर जलते रहना ही मेरा लक्ष्य है"

विस्मृति ·

विस्मृति भी आनन्द है.

यदि मनुष्य अपने सुख-दु.ख को जल्दी विस्मृत नही कर सकता, तो वह कभी आनन्द का अनुभव भी नही कर सकता. संभवत. या तो वह निरन्तर हँसता-ही हँसता रहता, या फिर रोता ही रोता, और तव उसकी दशा एक पागल के तुल्य होती.

मैंने देखा—सुख को भूल कर ही मनुष्य दु:ख मे आनन्द की अनुभूति कर सकता है. दु ख को भूल कर ही सदा प्रसन्न रह सकता है

इसीलिए मैंने अनुभव किया—विस्मृतियो में ही आनन्द है.

घडे का सन्मान :

घड़े को आग में पकता देखकर पानी मे भीगी हुई मिट्टी ने ठडा साँस छोडते हुए कहा—"उफ् ! तुम्हारा जीवन वडा कष्टमय है. कितनी वेदना झेल रहे हो."

घडे को रमणियो के मस्तक पर ठुमकते देख कर पैरो में दबी हुई मिट्टी ने कहा—"अहा ! हमारे कुल मे तुम्ही एक सौभाग्यशाली हो कितना सन्मान मिला है तुम्हे !"

मैं अनुभूति की गहराई मे डूब गया और घड़े की भाषा में सोचने लगा—"जो कष्टो को हँसते-हँसते झेलता है, उसे जीवन मे इसी प्रकार सन्मान प्राप्त होता है."

उद्‌वोधन

"मानव ! तुम ससार के सबसे महान् प्राणी हो !

तुम अनन्त शक्ति के स्रोत, और अक्षय आनन्द के भडार हो.

तुम्हारे एक हाथ मे स्वर्ग है, और दूसरे मे नरक ! तुम्हारी एक भुजा मे ससार है, तो दूसरी मे मुक्ति ! तुम्हारो एक दृष्टि मे सृष्टि है तो दूसरी में प्रलय ! तुम भाग्य के खिलोने नही, उसके निर्माता हो ! तुम समय के सेवक नही, शासक हो.

तुम काल के ग्रास नही, किन्तु कालजयी पुरुष हो

तुम अपने स्वरूप को समझो, अपनी शक्तियो को जगाओ ! और जो आज तक नही कर पाये वह कर दिखाओ !

अधकार से प्रकाश की ओर :

यदि धरती पर अन्धकार नही फैलता, तो दीपक जलाना किसे याद आता ?

यदि शरीर पर रोग का आक्रमण नही होता, तो औषधि का महत्त्व कौन समझता ?

यदि असत्य की नि सारता नही प्रतीत होती, तो सत्य का स्वागत करने कौन तैयार होता ?

यदि दुष्टों के उत्पीडन से ससार त्रस्त नही होता, तो सत्पुरुषो की शरण मे कौन जाता ?

यदि मृत्यु की विभीपिका मन को उद्भ्रांत नही बनाती तो अमरता की खोज कौन करता ?

शिकायत मिट गई :

मनुष्य ने चीटी से पूछा—"हाथी की विशाल देह, और तेजगति को देखकर क्या तुम्हे अपनी नन्ही-सी देह, और धीमी गति के लिए कभी शिकायत या निराशा नही हुई ?

चीटी ने उत्तर दिया—

जब मैंने देखा, तुम पहाडो की अमाप ऊँचाई को नापने के लिए चीटी के समान कब से रेंगते चले जा रहे हो, तो मेरी शिकायत और निराशा, प्रेरणा तथा उत्साह मे बदल गई !

दुर्विचारो का कुत्ता .

कुत्ते को जिस घर में एक बार रोटी-टुकडा मिल जाता है, तो दुत्कारने पर भी वह बार-बार उसी घर मे हिला-हिला आता है

दुर्विचारो के कुत्ते को जिस मनुष्य ने एक वार प्रश्रय दे दिया,

तो बार-बार निकालने का प्रयत्न करने पर भी वे मन में कुत्ते की भाति घुस आते है

पूजा के ढोल :

एक दिन—मन्दिर के देवता से ढोल ने कहा—मैं तुम्हारी पूजा का सच्चा प्रतीक हूँ. जहाँ तुम्हारी पूजा होगी वहाँ मैं अवश्य पीटा जाऊँगा.

देवता मुस्कराया—सच तो यह है, जहाँ मेरी पूजा के ढोल पीटे जाते है, वहां मेरी पूजा होती ही नही.

जहाँ मेरी सच्ची पूजा होती है, वहाँ न कोई ढोल होता है, न कोई पीटने वाला.

पोल :

देव मन्दिर के समक्ष धमाधम पीटे जाते ढोल से मैंने पूछा—"क्या अपराध किया है तुमने, कि यो नृशसतापूर्वक पिटे जा रहो ?"

ढोल ने रुआँसे-स्वर मे कहा—"अपराध ? मैंने अपने जीवन में केवल यही अपराध किया है कि अपने भीतर पोल रखता रहा."

मैदान मे इधर उधर ठोकरे खाते हुए फुटबॉल से मैंने पूछा—"क्या अपराध है तुम्हारा, कि जहाँ जाते हो वही लोग ठोकरें मारकर भगा देते है"

फुटबाल ने गिड़गिडाते उत्तर दिया—"मेरा अपराध यही है कि भीतर मे पोल (हवा) भरे रखता हूँ."

मैंने अनुभव किया– "जहाँ भीतर पोल है, वहाँ अपमान है, तर्जना है, ताडना और यातना है"

प्यार और समर्पण :

कुएँ ने सागर से कहा- "तुम्हे नदी से इतना प्यार क्यों है ? देखते नही, वह कितना कूड़ा-कचरा अपने साथ लाती है, और तुम्हारे उदर मे डाल देती है. एक मुझे देखो, कितना स्वच्छ और निर्मल पानी है. फिर भी तुम मुझ से कभी स्नेह नही करते ?"

सागर ने लहरो के मिष हँसते हुए कहा—"तुम से कोई कैसे प्यार कर सकता है ? जहाँ चारो ओर घेराबदी कर रखी है, कजूस के धन की तरह अपना जल छिपा रखा है वहाँ कोई कैसे प्यार करने आयेगा ? देखते नही, नदी कितने उत्साह के साथ मुझ मे समर्पित हो जाती हो जहा समर्पण है, वही प्यार मिलता है."

पूजा : करना या करवाना :

फूलो ने प्रकृति से विनम्र प्रार्थना की—"क्या हमारे भाग्य मे यही लिखा है कि हम जन्म-जन्म तक पत्थरो के चरणो मे चढ़कर उनकी पूजा-अर्चा करते रहे."

प्रकृति ने मुस्कराकर कहा—"पुत्रो, यदि तुम्हे यह पसद नही तो चलो, आज से पत्थर तुम्हारी पूजा करेंगे."

फूल प्रसन्नता से झूम उठे फूलों की पूजा के लिए अब एक-एक करके पत्थर आने लगे. फूलों की सुकुमार देह क्षत-विक्षत होने लगी, पखु-डियाँ टूट-टूट कर गिरने लगी और उस पीड़ा से फूल कराह उठे.

प्रकृति सामने खडी फूलो की दुर्दशा देख रही थी. फूल चरणो मे पहुँच कर प्रार्थना करने लगे—"माँ, हमे पूजा नही चाहिए, क्षमा करो !"

प्रकृति ने फूलों को समझाते हुए कहा—पुत्रो ! पूजा करना सरल है, और करवाना कठिन, वहुत कठिन !

पूजा करना सुधा पान की भाँति मधुर है, पूजा करवाना विष पान की भाँति कटुतम ! असह्य !

मरण का महत्त्व .

वैद्यराज स्वर्ण को भस्म करने के लिए उसे अग्नि-पुट मे डाल रहे थे

अग्नि ने स्वर्ण से कहा— देखो, यह वैद्य कितना दुष्ट है, तुम्हारे जैसे निर्मल और तेजस्वी को भी भस्म करने का प्रयत्न कर रहा है"

स्वर्ण ने धैर्यपूर्वक कहा—"बहन ! घबराओ नही ! जिसका जीवन महत्वपूर्ण होता है, उसका मरण भी अवश्य महत्वपूर्ण होता है, जीते जी मेरा जो मूल्य है, भस्म होने पर और अधिक बढ़ेगा ससार मेरी भस्म (स्वर्ण भस्म) को रसायन मान कर दीर्घ जीवन के लिए उसका उपयोग करता रहेगा."

पूर्णता की सभावना :

मैंने पूर्णिमा के चन्द्र से पूछा—आज तुम अपनी सपूर्ण ज्योत्सना के साथ जगमगा रहे हो, किन्तु फिर भी लोग उस प्रेम और स्नेह से नही देखते है जिस प्रेम एवं स्नेह से उस दिन देख रहे थे जब तुम केवल दो दिन के थे और एक क्षीण रेखा की भाँति थोडी-सी ज्योति लिए हँस रहे थे ?

चन्द्रमा ने एक दूधिया हसी बिखेरते हुए कहा—उस दिन मैं बालक था, विकास एव गति की अगणित सभावनाएँ मेरी ज्योति में अव्यक्त करवटे ले रही थी, पर आज मे वृद्ध हो चुका हूँ विकास के अन्तिम किनारे लग चुका हूँ, गति की सभावनाए समाप्त हो गई

चांद के उत्तर पर मैंने अनुभव किया—संसार पूर्णता से नही, किन्तु पूर्णता की सभावना से अधिक प्यार करता है.

विवेक का तैल :

जिस प्रकार समुद्र मे प्रवेश करने वाला पहले शरीर पर तैल मल लेता है, ताकि खारे पानी का शरीर पर कोई दुष्प्रभाव न पड़े, उसी प्रकार ससार-समुद्र मे प्रवेश करने वाला साधक जीवन मे विवेक का तैल मलकर चलता है, ताकि विकार-वासनाओ का खारा जल जीवन को प्रभावित न कर सके.

बुद्धि का पहरा :

हृदय-महल मे आने-जाने के लिए मन का द्वार खुला है.

सावधान, उस महल में सद्विचारो के सज्जन भी आएंगे और दुर्विचारो के चोर भी ! इसलिए उस पर बुद्धि का पहरा लगा दीजिए ताकि वह सज्जनो का स्वागत करे और चोरो को ललकार कर भगाता रहे.

अनेकता भी एकता के लिए :

एकता की बात का अर्थ यह तो नही कि संसार की समस्त शक्तियाँ अपना-अपना अस्तित्व विलीन करके एक मे ही समा जाएँ ? संसार के समस्त वृक्ष एक ही वृक्ष मे अपनी सत्ता केन्द्रित कर दे, और उसकी समस्त टहनियाँ केवल एक ही टहनी मे अन्तर्निहित हो जाएँ ? यह तो एकता नही, विलय होगा, और विलय मे सुन्दरता, समीचीनता कहाँ होती है ?

संसार की अनेक शक्तियाँ अलग-अलग मार्ग से चलती रहे,

वृक्ष की विभिन्न टहनियाँ, शाखा-प्रशाखाएँ अलग-अलग दिशाओ मे

बढती रहे तो इस मे भी शोभा और सुदरता है, शक्ति का विकास है, शर्त केवल यही है कि वे परस्पर एक दूसरे से सवद्ध एवं सापेक्ष रहे, परस्पर सहयोग करती रहे.

परस्पर सापेक्ष एवं सहयोग पूर्ण अनेकता की एकता के लिए है, विकास के लिए है

सेवा का आदर्श :

जो समाज, धर्म एवं राष्ट्र की सेवा करना चाहते है उन्हे वृक्ष की जड से आदर्श सीखना चाहिए

वृक्ष की जड भूमि मे छिपी रहकर अपने परिपार्श्व से रस खीचती है और सपूर्ण वृक्ष को वितरित कर देती है तने, डालियाँ, पत्ते और फल—सब को, जीवन सत्व मूल से प्राप्त होता है फिर भी मैंने देखा —वह जड किसी भी वाह्य प्रदर्शन से निरपेक्ष रहकर निरन्तर गुप्त रूप से अपना कार्य करती जाती है.

हमारे जन सेवको मे भी यह आदर्श साकार हो जाये तो····?

निराशा और मिथ्याशा .

निराशा सवसे खतरनाक है, किन्तु उससे भी ज्यादा खतरनाक है, मिथ्या आशा!

निराशा का झटका खाकर व्यक्ति पुन. उठ सकता है और सफलता के लिए प्रयत्नशील वन सकता है किन्तु मिथ्याआशा से लटका हुआ न कभी उससे छूट पाता है और न कुछ प्राप्त ही कर सकता है वस सदा-सदा लटके रहना ही मिथ्या आशा का वरदान है.

विरोध का धुआं :

किसी भी सत्कार्य की पहले उपेक्षा होती है. फिर विरोध, और

अन्त में स्वागत ! जो उपेक्षा से हतोत्साह हो जाते है, विरोध से घबरा जाते हैं, वे स्वागत के द्वार तक पहुँच नही सकते.

मैंने देखा है—अग्नि प्रज्ज्वलित होने से पूर्व रगड़ होती है, धुआँ होता है जो रगड़ एव धुएँ से निराश हो जाता है, वह ज्योति का दर्शन नही कर सकता.

नम्रता और कायरता :

नम्रता और कायरता में क्या अन्तर है ?

दूसरो के प्रति हृदय में जब स्नेह, सद्भाव एवं मृदुता की वृत्ति जागृत होती है तो वह नम्रता का रूप ग्रहण करती है किन्तु जब दूसरो के अन्याय एवं असद आचरण के प्रति किसी निहित स्वार्थ के कारण मौन एव विनय का प्रदर्शन किया जाता है तो वह वृति—कायरता कहलाती है.

मोती की पूजा :

मैंने देखा – जिसमे अपनी गरिमा एव महत्ता होती है उसे ससार कष्ट व तर्जना देकर भी अन्त मे उसी प्रकार पूजता है जिस प्रकार मोती के कलेजे मे छेद करके भी उसे हृदय पर धारण करता है.

संकट की अग्नि :

जो सकट के समय अपना धैर्य एव विवेक खो देते है, उन्हे संकट की अग्नि घास-फूस की भाँति जलाकर समाप्त कर देती है किन्तु जो धैर्य एवं विवेक से काम लेते है, उन्हे वही सकट की अग्नि स्वर्ण की भाँति निखार कर चमका देती है.

परख :

विचारो से विद्वत्ता की, वाणी से नम्रता की और व्यवहार से मनुष्य के चरित्र की परख होती है.

दो दुर्वृत्ति

मनुष्य जब दूसरो को आपद्ग्रस्त देखता है, तो उसके मन मे दो प्रकार की दुर्वृत्तिया जन्म लेती है—अहकार और नफरत !

१. वह अपनी श्रेष्ठता, बुद्धिमानी एव भाग्यशालिता पर सीना फुलाकर मचल उठता है.

२ दूसरो को बुद्धिहीन, मूर्ख एव दरिद्र कहकर उनकी दुर्दशा पर चुटकिया लेता हुआ उनसे नफरत करता है

मैं देखता हूँ, ये दोनो ही दुर्वृत्तिया मानव के पतन का कारण बनी है, और भाई-भाई को शत्रु के रूप मे उपस्थित करने वाली सिद्ध हुई है

मित्रता का जल :

मन के घट मे जब मैत्री का जल छलकता रहता है तो वचन, मन और कर्म सभी उस की मधुरता से आप्लावित होते रहते है. ससार मे जिधर भी वह देखेगा उसे मित्र ही मित्र दिखाई देगे. उपनिषद् की भाषा मे—

अथ यदि सखिलोककामो भवति
संकल्पादेवास्य सखायः समुत्तिष्ठन्ति ।

—छादोग्य उपनिषद् ८।२।५

जब भी मानव आत्मा सच्चे मन से मित्र लोक की कामना करता है तो सकल्प मात्र से उसे सर्वत्र मित्र ही मित्र दिखाई देते है.

❋

अनुभूति के आलोक में

स

मा

ज

की

शृं

ख

ला

एं

❋

अनुभूतिया जब समाज की शृ ंखलाओ को स्पर्श करने लगी तो उनके परिस्पद से सामाजिक चेतना के तार झनझना उठे। सामाजिकता का मूल आधार हैं–सेवा, प्रेम, शिक्षा, कर्तव्यनिष्ठा, व्यवहार कुशलता, अनुशासन और बलिदान होने की उमग ! और इनके सवाहक हैं व्यक्ति—पुरुष, नारी, बालक, वृद्ध, विद्यार्थी, अध्यापक, राजनेता, श्रमिक ! ये सभी अपने कर्तव्य, स्नेह एव सौजन्य की शृ खला मे बँधे रहे तो समाज की शृ खलाए बेडिया नही, आभूषण बन जायेगी—निश्चित ही !

शिक्षा का मूल :

अनुशासन शिक्षण का मूल आधार है अनुशासन के अभाव मे न शिक्षण लिया जा सकता है, और न ही दिया जा सकता है

शिक्षा समाधि है :

शिक्षा का मानदड उपाधि नही, मन-मस्तिष्क की समाधि है.

लम्बी चौडी उपाधियाँ प्राप्त करके भी यदि मन-मस्तिष्क असतुलित है, अज्ञान एवं कुंठा से ग्रस्त है तो वह शिक्षा भिक्षान्न की तरह सारहीन है, वे उपाधियाँ मन की आधि व्याधि के तुल्य है.

मजदूर और कारीगर .

एक भवन बनाने वाले दो व्यक्तियों से मैंने पूछा—तुम यहाँ क्या काम करते हो ?

मैं मजदूर हूँ—उत्तर मिला,

क्या मिलता है ?

तीन रुपये रोज !

और भाई तुम ?

मैं कारीगर हूँ !

तुम्हे क्या मिलता है ?

छह रुपये रोज !

दोनो के उत्तर पर मैं कुछ देर सोचता रहा, आखिर दोनो ही शारी-

रिक श्रम करते है, फिर मजदूर और कारीगर दो अलग वर्ग क्यो ? और दोनो के वेतन मे इतना अन्तर क्यो ?

यह वर्गभेद, यह वैपम्य ! यह शोषण ! न जाने कितने पहलुओ पर सोचता चला गया. तव तक दोनो व्यक्ति अपने काम पर लग गए थे मैने देखा—मजदूर विना कुछ सोचे समझे मसाला तैयार करके कारीगर के समक्ष रख देता था, कारीगर उस पर चिल्ला रहा था, मसाला ठीक नही ला रहे हो, सामान ठीक से नही रख रहे हो. इससे काम खराब हो जाता है.

मेरा चिंतन कुछ गहरा चला गया—मजदूर के सामने प्रश्न है सिर्फ काम करना ! और कारीगर के सामने प्रश्न है, काम को सही ढग से करना !

कार्यालय से कारखाने तक सर्वत्र मानव का यह मानसिक वैषम्य ही उसे अलग-अलग वर्गों मे बॉटे हुए है.

सोचना है—मनुष्य अपने कार्यालय (क्षेत्र) में सदा मजदूर की तरह ही काम करता रहेगा, या कारीगर भी बनेगा ?

नारी-शक्ति :

नारी शक्ति, विश्व की महानतम शक्ति है जिस देश व जाति की नारी शक्ति-प्रबुद्ध, स्वतन्त्र और गतिशील है, उस देश व जाति का जीवन कभी भी जडता से आक्रात नही हो सकता.

नारी सहचरी है

नारी पुरुष की दासी नही, सहचरी है वह वासनापूर्ति का साधन नही, किन्तु मानव-मन की रिक्तता की पूरक है नारी के नारीत्व

को पुरुष जितनी उच्च एव पवित्र दृष्टि से देखेगा, उसे उतनी ही उच्चता, पवित्रता एवं जीवन की समग्रता मिलेगी !

महिष्णुता का मत्र

परिवार समाज एवं राष्ट्र की एकता के प्रयत्न आज जोर शोर से किए जा रहे है. किन्तु फिर भी एकता की कडियाँ जुडने के बजाय बिखरती ही जा रही है संगठन और एकता का प्रयत्न आज अपनी छाया को पकडने जैसा दुष्कर कार्य लग रहा है, ऐसा क्यों ?

एकता, संगठन और सामूहिकता का आधार है—सहिष्णुता ! सगठन में अनेक व्यक्तियों के सह-अस्तित्त्व की भूमिका है दो व्यक्ति एक साथ खडे होगे, चलेगे तो टकराहट भी होगी. उस टकराहट को सह-कर भी जो साथ-साथ चलना जानता है वही एकता एव संगठन को स्थिर रख सकता है

एक जूता .

धन-वैभव और समृद्धि सदा भौतिकवल सापेक्ष रही है, जिसके पास शक्ति है वह उसकी अनुचरी हो जाती है. इसीलिए तो कहावत है, "जिसकी लाठी उसकी भैस" इसी बात को और अधिक स्पष्ट करती है मुगल बादशाह की यह घटना !

दिल्ली के तख्त पर आसीन एक मुगल वादशाह का ताज जब एक अन्य वादशाह ने छीन लिया तो विजेता के हाथ पराजित वादशाह का सवसे प्यारा कोहे-नूर हीरा भी पहुँच गया

विजेता ने पूछा—कोहूनर की कीमत क्या है ?

एक जूता !—उत्तर मिला

इसका मतलव—विजेता ने पूछा, पराजित बादशाह ने रहस्य स्पष्ट करते हुए कहा—"मेरे पूर्वज शक्तिशाली थे, उन्होने अपने सैन्य बल से राजपूतो से इसे छीना था और इतने दिन यह मेरे

खजाने मे सुरक्षित रहा ! अव तुम्हारे जूते की ताकत वढ़ गई है इसलिए तुमने मुझ से छीन लिया कोई तुम्हारे से ज्यादा ताकतवर आयेगा वह तुमसे भी छीन लेगा !"

विजेता भीतर-ही-भीतर अपने पाशविक वल की पराजय की कटुता मे तिलमिला उठा !

जहाँ सकल्प वल नही :

राष्ट्र की आर्थिक दरिद्रता से मुझे उतना खतरा नही लग रहा है, जितना खतरा संस्कारो की दरिद्रता से लग रहा है.

जिस राष्ट्र के संस्कार उच्च होते हैं, सकल्प वलवान होते हैं, वह राष्ट्र पिछड़ कर भी शीघ्र प्रगति कर सकता है. किन्तु जिसके सस्कार एव सकल्प ही दुर्वल है, जिसकी मनोभूमि वंजर है, वहाँ प्रगति और समृद्धि के अकुर कैसे फूट सकेंगे ?

अच्छाई-वुराई .

सूप ने कहा—मेरा आकार चाहे जैसा हो, किन्तु स्वभाव देखो, वुराइयो को निकालकर अच्छाइयो को रखता हूँ.

चलनी ने कहा—तुम तो स्वार्थी हो, मुझे देखो जो अच्छी-अच्छी वस्तु ससार के लिए समर्पित करके केवल कचरा अपने पास रखती हूँ जानते हो, गरल पान करने वाला ही महादेव कहलाता है, सुधा-पान करने वाला नही !

मैंने सोचा :

मैंने देखा—लौ प्रज्वलित होकर तिल-तिल जलती रहती है, ससार को नये प्रकाश से भर देने के लिए

मैंने देखा—नदी कल-कल करके अविरत वहती रहती है, धरती की सूखी गोद को हरी-भरी करने के लिए.

मैंने देखा—पवन थिरकता हुआ अविश्रांत चलता रहता है, जग के प्राणो को नव-चेतना देने के लिए

मैंने देखा—वादल उमड़-घुमड़ कर अपना सर्वस्व निछावर कर जाते हैं—पृथ्वी की अनत प्यास शात करने के लिए

मैंने सोचा—पृथ्वी का निरावाध उपभोग करने वाला मनुष्य क्या करता है, किसके लिए ?

विना वँधा कुआँ :

मैंने देखा—देहातो मे कही—कही पर विना वँधे कुएँ सपाट भूमि पर खुले पडे रहते है वे कुएँ खतरनाक होते हैं, वहुत सावधानी रखनी पडती है.

मैने अनुभव किया—जिनका जीवन नीति एवं मर्यादा के बधनो से रहित हैं, वे विना वँधे कुएँ के समान सदा खतरनाक होते है.

दीवार नही, द्वार चाहिए .

जो सम्पत्ति और प्रतिष्ठा दीवार वनकर मनुष्यता को खडित करने का प्रयत्न करती है, वह सम्पत्ति नही, विपत्ति है, वह प्रतिष्ठा नही, अप्रतिष्ठा है.

सच्ची संपत्ति और प्रतिष्ठा वह है जो मानव-मानव को मिलाने में द्वार का कार्य करती है.

आज हर दीवार को द्वार वनाने की जरूरत है, विभक्त मानवता को मिलाने की आवश्यकता है, खडित मानव प्रतिमाओं की पुन. प्रतिष्ठा अपेक्षित है

सपत्ति श्रम और प्रतिष्ठा का उपयोग इसी ध्येय की पूर्ति के लिए किया जाए तो कितना अच्छा हो.

उलटी शिक्षा :

मिट्टी के वर्तनो को एक साथ पड़े देखकर शिक्षक ने विद्यार्थी से कहा—"देखो, हमे भी इसी प्रकार अपने भाइयो के साथ प्रेमपूर्वक हिलमिल कर रहना चाहिए"
तभी कोई एक वर्तन नीचे से खिसका, और ऊपर के वर्तन धड़ाधड़ एक दूसरे से टकराकर चूर हो गए

एक डोर के सहारे पतग को ऊँचे आकाश मे उड़ते देखकर शिक्षक ने विद्यार्थी से कहा—"देखो, हम भी प्रेम को डोर से वँधकर इसी प्रकार मस्त उड़ान भर सकते है"

तभी कोई दूसरा पतग उसके पास आया, और दोनो आपस मे झगड़ कर कट गए
विद्यार्थी घर आकर पहली वात भूल गया, और दूसरी वात को जीवन मे साकार करने के लिए वह अपने भाइयो के साथ झगड़ने लगा, और मित्रो के साथ द्रोह करके उनकी डोर काटने लगा.

विद्यार्थी : अध्यापक :

विद्यार्थी का जीवन गुलाव का एक पौधा है अध्यापक एक कुशल माली है वह माली पौधे की जडो मे सुन्दर सस्कारो की खाद डालता है, शिक्षा का जल सीचता है और पौधे को विकसित करने का प्रयत्न करता है.

यदि माली उन पौधो के डठलो को सुखा कर अपना चूल्हा जलाने की वात सोचता हो, तो उससे वड़ा गद्दार और कौन होगा ?

चतुर्भुज या चतुष्पद :

भारतीय सस्कृति मे दाम्पत्य जोवन चतुर्भुज का जीवन माना गया है. धर्म, संस्कृति एव सस्कारों के उन्नयन मे वह पूर्ण रूप से समर्थ हो सकता है. किन्तु उस पवित्र जीवन को यदि मात्र भोग और वासनापूर्ति का माध्यम मान लिया गया तो, वह चतुर्भुज का नही, किन्तु चतुष्पद का जीवन वनकर रह जायेगा

तीन मनोवृत्तियाँ

एक धर्मशाला में तीन व्यक्ति आये. गन्दगी का ढेर लगा देखकर पहला व्यक्ति मन ही मन वड वडाता हुआ अपना सामान उठाकर दूसरी जगह चल दिया.

दूसरे व्यक्ति ने मैनेजर के पास जाकर डटकर गालियाँ दी, वह गन्दगी और अव्यवस्था के लिए खूब जोर जोर से चिल्लाया

तीसरे व्यक्ति ने चुपचाप झाडू लेकर अपना कमरा साफ किया और वहाँ ठहर गया

समाज रूपी धर्मशाला में आज तीन मनोवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं, पहली पलायनवादी मनोवृत्ति है, इसे पहले दर्जे की कायरता कहा जा सकता है दूसरी शिकायतो का पुलिदा लिए चिल्लाने की मनोवृत्ति है—इसे 'अकर्मण्य अहंकार' कहा जा सकता है तीसरी समाज सुधार की उच्च मनोवृत्ति है इसे सच्ची कर्तव्यनिष्ठा कही जा सकती है

युद्ध के चार कारण .

विश्व मे हुए आज तक के समस्त युद्धो का कारण खोजा जाए ता

चार शब्दो मे उसका उत्तर हो सकता है—सत्ता, सुन्दरता, सपत्ति और स्वतन्त्रता !

अभाव और प्रतिस्पर्धा .

गरीबी मे मनुष्य दु खी रहता है, अभावो से संत्रस्त होकर
समृद्धि मे मनुष्य दु.खी रहता है, प्रतिस्पर्धा व ईर्ष्या से जल कर.

उच्चता या गभीरता :

पर्वत पर तेज वर्षा हुई, शतश· धाराओ के रूप में पानी नीचे की ओर जाने लगा.

पर्वत ने बहते हुए पानी से पूछा—कहाँ जा रहे हो ?
सरोवर की ओर—पानी ने बहते-बहते कहा !
क्या तुम्हे मेरी विशाल ऊँचाई अच्छी नही लगी ? जो एक गड्ढे मे जाकर रहना चाहते हो ?—पर्वत ने टोका
तुम्हारे पास उच्चता तो है, किन्तु गभीरता नही, जीवन का आधार उच्चता नही, गभीरता होती है, मुझे गभीरता प्रिय है—पानी ने तेजी से अपने चरण सरोवर की ओर बढा दिए

व्यष्टि और समष्टि ·

सुमेरु का अस्तित्व छोटे-छोटे रजकणो में सन्निहित है.
सागर का अस्तित्त्व, नन्हे-नन्हे जलकणो मे अन्तर्निहित है.
स्कध का अस्तित्त्व, लघु अणु-परमाणुओ के सघात पर टिका हुआ है.
काल चक्र का अस्तित्त्व क्षण-क्षण की कडी से बंधा हुआ है.
समष्टि का अस्तित्त्व, व्यष्टि-व्यष्टि के साथ जुडा हुआ है.

सबसे खतरनाक प्राणी :

संसार में सबसे अधिक खतरनाक प्राणी कौन है?—एक प्रश्न उठा.

"सांप"—एक उत्तर आया—"चूकि वह मनुष्य जैसे श्रेष्ठ प्राणी को भी काटता है."

'सिंह'—दूसरा उत्तर मिला—"चूकि वह मनुष्य जैसे महान प्राणी पर भी आक्रमण करता है."

प्रश्नकर्ता ने ही उत्तर दिया—नही! 'सांप' मनुष्य को इसलिए काटता है, चूकि वह उससे भय खाता है 'सिंह' मनुष्य पर इसलिए झपटता है चूकि वह उसे गोली का निशाना बनाना चाहता है. किन्तु मनुष्य ऐसा खतरनाक प्राणी है, जो किसी भय के वश नही, किन्तु क्रीडा के लिए भी दूसरो की जान लेने में हिचकता नही है."

व्यक्ति और समाज :

मशीन के अगणित पुर्जों का स्वतन्त्र अस्तित्त्व होते हुए भी उनका स्वतन्त्र उपयोग नही.

समाज के असख्य व्यक्तियो का स्वतन्त्र अस्तित्त्व होते हुए भी उनका अलग अलग महत्त्व नही.

पुर्जे की उपयोगिता और महत्ता मशीन के साथ जुडे रहने मे हैं. व्यक्ति की उपयोगिता एव महत्ता समाज के साथ मिले रहने मे है

मित्रता के नाम पर :

आग पर रखा पानी खौल रहा था अगारे ने पूछा—"क्या वात है, यह उछल-कूद, और बड़वडाहट किस लिए, आखिर चाहते क्या हो?"

पानी ने उत्तर दिया—"कुछ नही ! सिर्फ तुम्हारे से मिलना:! यह अपने बीच का अन्तर हटा दो, और आओ हम भाई-भाई की तरह गले मिले."

अगारे ने पानी की मैत्री के लिए हाथ वढाया, अपनी तेज आँच से वर्तन के तले को जलाया और पानी अंगारे पर वरस पड़ा ! अगारा कोयला वनते हुए धुएँ के मिस अतिम सांस खीचते हुए वोला—"क्या कलियुग मे मित्रता के नाम पर इसी प्रकार मित्रो की जान के साथ खेला जायेगा?"

आजादी की मर्यादा .

पतग आकाश में ठुमक-ठुमक उड़ रही थी. उन्मुक्त उड़ान भरते हुए पक्षी ने व्यग्यपूर्वक कहा—क्या खूव उडान ! डोर से वंधी मनुष्य के इशारो पर नाच भी रही है, और उन्मुक्त उडान भरने वाले पक्षियो के साथ समता भी करना चाहती है !

पतग को पक्षी का व्यग्य खटका, वह मनुष्य के हाथो से मुक्त होकर पक्षियो के साथ उडने को मचल उठी ! उसने धागे पर एक जोर का झटका दिया, धागा टूट गया, पतंग आजादी पाकर नाच उठी ! देखते ही देखते पतग मुँह के बल नीचे आने लगी. वह ऊपर बढना चाहती थी, हवा नीचे धकेल रही थी ! कुछ ही क्षणो मे वह किसी कटीली झाडी पर जाकर अटक गई

उडते हुए पक्षी ने पुकारा—"आओ पतग ! आजादी से ऊपर उड़ें"
पतग न काटो की पीडा से कराहते हुए कहा—"यही आजादी मेरी वरवादी का कारण है. यदि मनुष्य के हाथों मे धागे के साथ जुडी रहती, तो यो कांटो से शरीर तो नही छिलवाती ?"

विकास या संकोच :

इस तत्र एवं यंत्र के युग मे मनुष्य को लगता है कि वह विस्तृत एव विकसित होता जा रहा है किन्तु जब उसके भीतर की मानवता को नापने चलता हू तो मुझे लगता है, वह हर क्षण संकराता और सिकुड़ाता जा रहा है.

विभक्त व्यक्तित्व .

मनुष्य अपने भीतर विभक्त हो चला है, उसका व्यक्तित्व खण्डित होकर बँट गया है, मस्तिष्क उसका तेज हुआ है, किन्तु हृदय शून्य ! ऊपर से देखने में मर्यादित लगता है, किन्तु भीतर से निरकुश ! उसका व्यवहार बड़ा सभ्य है, किन्तु आकांक्षाएं जगली ! उसके मुंह पर मधुरता है किन्तु मन मे कटुता.

मानव-पुष्प :

एक बगले मे हम रात्रिवास के लिए ठहरे हुए थे. रात कुछ घनी हुई, पवन कुछ ठुमक-ठुमक चलने लगा तो सारा बगला भीनी-भीनी सुगंध से महक उठा.

हमने इधर उधर देखा, 'यह भीनी-भीनी गध कहाँ से आ रही है," पर, कुछ पता नही चला.

तभी बगले के मालिक ने बताया,—"पीछे ही 'रात की रानी' का फूल है, दिन में सुप्त रहता है, रात होने पर खिलता है और मीठी-मीठी गंध से समूचा परिपार्श्व महक उठता है."

"क्या आज ऐसा कोई मानव-पुष्प है, जो स्वय अंधकार मे छिपा रह कर अपने कर्तृत्व की सौरभ से समाज के वातावरण को महका रहा हो ?"— मैं चिंतन की गहराई में उतर गया

निरर्थक अहकार :

कलम ने कहा—ससार का समस्त साहित्य मैंने लिखा है, यदि मैं न होती, तो सरस्वती का भंडार खाली पड़ा रहता

स्याही ने कहा—अगर मैं न होती तो तुम्हारा क्या मूल्य होता. एक भी पक्ति नही लिखी जाती.

पत्र (कागज) ने कहा—मैं न होता, तो कलम और स्याही का क्या उपयोग ? मेरी देह पर ही सरस्वती का मन्दिर खडा हुआ है.

हाथ ने कहा—लिखने वाला तो मैं हू, यदि मैं न होता तो तुम तीनो निरर्थक थे !

मस्तिष्क गभीरता पूर्वक हंसा—कर्तृत्व तो किसी ओर का है, तुम निरर्थक ही अहंकार कर रहे हो.

शिकायत और शिकायत :

पृथ्वी की गोद मे बंद रजकण ने शिकायत की—"तुम्हारे यहां कितनी जड़ता है, कितने बधन है ? देखो खुले आकाश मे ये बादल किस प्रकार मस्ती मे झूमते हुए उन्मुक्त विचरण कर रहे हैं"

और पवन के परो पर बैठकर रजकण आकाश की यात्रा को चल पडा !

आकाश के आश्रय मे बधे बादलो ने शिकायत की—यहाँ कितनी अस्थिरता है ? शरणार्थी की भाँति प्रतिदिन इधर उधर भटकते रहना ? देखो ये रजकण पृथ्वी की गोदी में आराम व शाति के साथ सोए पड़े है."

और वायु के रथ में बैठकर बादल धरती की यात्रा को निकल गया.

मैंने देखा—आकाश की भटकन से ऊबकर रजकण पुनः एक दिन पृथ्वी की गोद में आ गया.

मैंने देखा—पृथ्वी के शोषण से घबराकर बादल पुनः आकाश की छाती से जा लगा.

सगठन का बल

मैंने देखा—जल अपने प्रवाह के साथ जिस मिट्टी को धीरे-धीरे बहाकर ले जाता था, वही मिट्टी सगठित होकर एक दिन उसके प्रवाह को रोकने मे समर्थ हो गई.

और फिर देखा—धीरे-धीरे बहता हुआ जल, जो मिट्टी के भारी अवरोध से टकरा कर लौट रहा था, वही एक दिन सगठित होकर झपाटे के साथ मिट्टी की दीवार को गिराकर उसके शिर पर से आगे निकल गया.

मैंने अनुभव किया—संसार मे जिसके पास संगठन का प्रबल बल है, वही आज शक्तिशाली है. उसी के हाथ में विजय है.

विज्ञापनप्रियता :

आकाश में उमड-घुमड कर गहराने वाले बादलो से मानव ने पूछा—बादलो ! जब तुम्हे धरती की प्यास बुझाने बरसना ही है तो चुपचाप क्यों नही बरस जाते ? गरज-गरज कर इतना विज्ञापन करने की क्या जरूरत है ?

रिमझिम बरसते हुए बादलो ने कहा—बन्धु ! तुम्हारी धरती की यही तो पद्धति है. तुम विज्ञापन के अभ्यस्त हो गए हो. चुपचाप आकर बरसने वाली बदली को तुमने कभी टुकुर-टुकुर निहारा ? और गरज-गरज कर गहराने वाली घटा को कभी बिना देखे रहे ? तुम्हे विज्ञापन प्रिय है, इसीलिए मैं विज्ञापन करके बरसता हूँ.

मनुष्य अचकचा कर अपने मन मे देखने का प्रयत्न करने लगा.

उन्नति का मूल : सहयोग :

पतंग ने डोर से कहा—"अनन्त आकाश का स्पर्श पाकर इतनी अकड़ रही है ? देखती नही, यह मेरा ही प्रभाव है कि तू आकाश की खुली हवा में यो आराम से खेल रही है"

डोर ने कहा—"वाह ! क्या खूब कहा ! तुम्हे पता नही, मेरे ही सहारे तुम आकाश के अगन मे ठुमक-ठुमक कर इतरा रहे हो. यदि मैं न होती तो इतने उँचे नही आ पाते"

मनुष्य ने कहा—"झगडो नही ! तुम एक दूसरे के सहयोग से ही इतने ऊँचे चढे हो ! वरना तुम कहा होते और दूसरे ही क्षण डोर-पतग बिछुड गये, पतग कट कर कही वच्चो के हाथो में गिरी । वच्चो ने झपट कर चूर-चूर कर दी और डोर भी नीचे आ गिरी, जिसके हाथ लगी उसी ने खीचा और टुकडे-टुकड़े हो गई !"।

मैंने देखा—"सहयोग उन्नति का मूल है असहयोग पतन का !"....

बुराई ने भलाई को बढाया है :

कघे ने कहा—"यदि सिर पर बाल नही होते, तो उलझने का प्रश्न ही नही होता."

प्रकाश ने कहा—"यदि अन्धकार नही होता, तो दीप जलाने का कष्ट ही नही करना होता"

न्यायाधीश ने कहा—"यदि अपराधी नही होते, तो कानन की पुस्तके वनाने की जरूरत नही होती"

वाल ने उत्तर दिया—"मैं न होता, तो कघे का नाम कौन जानता !"

अन्धकार ने उत्तर दिया—"यदि मैं न होता, तो प्रकाश का क्या महत्त्व होता ?"

अपराधी ने सगर्व जवाब दिया—"यदि मै न होता तो न्यायाधीश भी न होता ?"

मैंने अनुभव किया—हर लघु ने गुरु को पैदा किया है, हर बुराई ने भलाई का महत्त्व स्थापित किया है

नफरत और प्यार :

मैंने देखा—जब वर्षाती तूफान आते है, तो लताए धराशायी हो जाती हैं, वृक्ष कांप-कांप उठते है. पक्षी ठिठक-ठिठक कर घोसलो में छुप जाते है और मनुष्य घर के दरवाजे बन्द करके भयभीत-सा त्राहि-त्राहि पुकारने लगता है

मैंने देखा—जब मन्द सुगन्धित बासती बयार बहने लगता है तो लताए मुस्करा उठती हैं, वृक्षो मे नव-जीवन अगडाई लेने लगता है. पक्षी मचल-मचल कर किलकारिया भरने लगते है, और मनुष्य खुले आसमान के नीचे आनन्द विहार करने लगता है

मैंने समझा—जो दूसरो को भयभीत करता है ससार उससे नफरत करने लगता है जो दूसरो को आनन्दित करता है ससार उससे प्यार करता है

भूल का पश्चात्ताप .

एक दिन हवा ने वृक्ष के पत्तो को चुपके-चुपके सहलाते हुए कहा—"यह भी कोई जीवन है ? एक जगह चिपककर बैठ गए, आओ। मेरे साथ चलो, धरती-आकाश की सैर करा दूँ."

पत्तो को हवा की बात अच्छी लगी अपने साथियो से विचारने लगे

—"वृक्ष तो अपनी शोभा के लिए हमें बांध कर रखना चाहता है, वह कभी भी आजादी नही देगा आओ हम क्राति करके हवा के साथ निकल पडे और धरती के रग-विरगे दृश्य देखे"—

पत्तो की बातचीत पर वृक्ष ने कहा—"बेटा! किसी वहक मे आकर गलत निर्णय मत करना."

पत्तो ने घूर कर कहा—"तुम्हारी बुद्धि सठिया गई है इसलिए क्राति को बहक बता रहे हो" और कुछ पत्ते वृक्ष का साथ छोडकर हवा का हाथ पकडे निकल गए.

पत्तो को खुले आकाश मे हवा के साथ तरते हुए बड़ा आनन्द आया! धरती की कोमल शय्या पर वे लुढकते हुए एक दूसरे की गलवाहियां डालकर अठखेलियां करने लगे!

कुछ देर बाद पत्तो के प्राण अकुलाने लगे, जीवन रस सूखने लगा, और उन्हे लगा—शरीर ऐंठ रहा है हवा का हलका-सा स्पर्श भी उनके देह को मरोड़ रहा है और अब पत्तो ने किसी पुरानी वाड़ की ओट मे मुँह छिपाकर अपनी भूल पर पश्चात्ताप करते हुए अन्तिम दम तोड दिया.

नित नवीनता का रहस्य :

मैंने वृक्ष से पछा—तुम प्रतिवर्ष नये-नये पत्तो के परिधान से आवृत होते हो, नये-नये फूलो से शृंगार करते रहते हो, और नये-नये फलो से अपना गौरव बढाते रहते हो, इसका रहस्य क्या है?

वृक्ष ने कहा—मैं समय की पुकार सुनकर पतझड मे अपना सर्वस्व त्याग करने को तैयार रहता हू

पुराना छोड़ कर नये को स्वीकार करने के लिए तत्पर रहना ही मेरी नित-नवीनता का रहस्य है

मैंने धारा में वहते हुए जल स्रोत से पूछा—"तुम निरन्तर पानी का संग्रह रखते हुए भी प्रतिपल उज्ज्वल, निर्मल और मधुर जल से भरे रहते हो ! गन्दा जल भी तुम्हारे साथ मिलकर निर्मल हो जाता है, यह क्या रहस्य है ?"
जल स्रोत ने उत्तर दिया—"मैं निरन्तर गतिमान रहता हूँ, पुराने को आगे संचरित करना और नये को ग्रहण करते रहना मेरी नित्य-निर्मलता एव मधुरता का रहस्य है.

आय-व्यय :

मरुस्थल के सूखे तालाव ने कुएं से पूछा—"भैया ! मेरा तो पानी कब का ही सूख गया है, और तुम्हारे पास अभी भी खूब पानी है ? इसका क्या रहस्य है ?"
कुए ने गभीर होकर कहा—"मैं सामान्य गृहस्थ की भाति अपनी आय को देखकर ही व्यय करता हूँ, किन्तु तुम किसी सटोरिए के धन की तरह आय का विचार किए बिना ही खुले हाथ से लुटाते हो. इसी लिए तुम शीघ्र सूख गए और मै आज भी सजल हूँ."

गुरु और नेता :

जिसमे शिष्य वनने की योग्यता नही, वह गुरु कैसे वन सकता है

जिस अनुयायी मे दूसरो के साथ चलने की योग्यता नही, वह दूसरो को साथ लेकर चलने वाला 'नेता' कैसे वन सकता है ?
वास्तव में सच्चा शिष्य ही सच्चा गुरु वन सकता है. और सच्चा अनुयायी ही सच्चा नेता होता है.

प्रस्ताव की हत्या :

एक वार एक 'विराट श्वान सम्मेलन' हुआ श्वान जाति के विकास

के लिए अनेक महत्वपूर्ण चर्चाओ के वाद एक बूढे कुत्ते ने कहा— आज हम एक सामूहिक प्रतिज्ञा करे कि अपनी जाति के सास्कृतिक-विकास के लिए हम निरन्तर प्रयत्नशील रहेगे और कैसा भी प्रलोभन आये, तो भी भाई-भाई परस्पर लड़ेंगे नही ”

सर्व सम्मति के बाद प्रतिज्ञा-विधि पूर्ण की जाने लगी तभी आकाश में उडती हुई एक चील के मुँह मे से हड्डी का एक टुकड़ा नीचे गिर पडा सभी कुत्ते उस पर झपटे और घुर्रा कर परस्पर लड़ने लगे ”

मेरे मन मे एक प्रश्न उठा—“अपने ही प्रस्ताव की अपने हाथो हत्या करने की आदत कुत्तो से मनुष्य ने सीखी या मनुष्य से कुत्तो ने ?”

जिन्दगी नही, तो मौत क्यो ?

मेरे बंधु ! यदि तुम किसी के घावो की मरहमपट्टी नही कर सकते हो, तो उस पर नमक तो ना छिटको !

मेरे बधु ! यदि तुम किसी के होठो पर मुस्कान नही लहरा सकते हो, तो आखो मे आँसू की धार तो मत वहाओ !

मेरे बधु ! यदि तुम किसी को जीवनदान नही दे सकते हो, तो उसकी लूली-लगडी जिन्दगी पर मौत तो मत बरसाओ !

चार प्रकार के मनुष्य :

१ कुछ मनुष्य न खुद खाते है, न दूसरो को खाने देते है—उन्हे ‘मक्खीचूस’ कहा जाता है.

२ कुछ मनुष्य खुद खाते हैं, किन्त दूसरो को खिलाते नही, उन्हे ‘कजूस’ कहा जाता है ।

· कुछ मनुष्य खुद भी खाते है, दूसरो को भी खिलाते है. उन्हे 'उदार' कहा जाता है ·
४. कुछ मनुष्य खुद न खाकर भी दूसरो को खिलाते है, उन्हे 'दाता' कहा जाता है.

दाता हर कोई नही वन सकता, किंतु उदार तो वना जा सकता है. कंजूस और मक्खीचूस कहलाकर अपना गौरव न घटाइए !

दृढ निश्चय ·

जो मनुष्य छोटे-छोटे प्रलोभनो के समक्ष अपने शुभ सकल्पो की वलि देता है, अपने महत्वपूर्ण निश्चयो को नष्ट कर देता है और अपने स्वीकृत मार्ग से लड़खड़ा जाता है, वह मनुष्य जीवन मे कोई भी महत्वपूर्ण कार्य नही कर सकता !

ध्येय के लिए :

अपने ध्येय की पूर्ति के लिए यदि संकट सहने पडे तो मुस्कराकर सहते जाओ

विपत्तियां आये तो उनका स्वागत करते जाओ ! मृत्यु आये तो निर्भय हो उसका आलिगन करते जाओ.

संकट समाप्त हो जायेगे, विपत्ति सपत्ति वन जायेगी और मृत्यु अमरता का वरदान दे जायेगी

बदल दो :

तुम जव घृणा को प्रेम मे वदल दोगे, तो नरक स्वर्ग वन जायेगा ।

तुम जव द्वेप को मैत्री मे वदल दोगे, तो मृत्यु जीवन वन जायेगा ।

तुम जव आसक्ति को समर्पण मे वदल दोगे, तो अधकार प्रकाश वन जायेगा !

महापुरुषो की तीन विशेषताए :

महापुरुषो के जीवन चरित्र को पढने पर उनके जीवन की दुर्लभ विशेषताए मेरे मानस-पटल मे अकित हो गई—

१ सब कुछ चले जाने पर भी उनका मन कभी रिक्त नही हुआ, वे सदा उदार रहे !

२ विपत्तियो के तूफान आने पर भी उनके धैर्य का नदादीप कभी बुझ नही पाया।

३ मृत्यु की घडी आने पर भी उनका मन कभी उदास और व्यथित नही हुआ।

एक गुण :

जीवन मे एक ही गुण यदि आ जाये तो मनुष्य का उद्धार हो सकता है

दरिद्रता मे यदि धैर्य है, तो वह दरिद्रता से उबार सकता है.

धनाढ्यता मे यदि सयम है, तो वह पतन के गर्त मे गिरने से बचा सकता है।

अनुभूति के आलोक में

गा
ग
र
में
सा
ग
र

❋

चिंतन के छोटे-छोटे जलकण जब बुद्धि के पारावार मे एकत्र होने लगते हैं तो वे अथाह सागर का रूप धारण कर लेते हैं. उन्ही चिंतन कणो को जब अभिधा-लक्षणा की गागर मे भरकर चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है तो सागर का स्वरूप गागर मे झलक उठता है और पाठक कह उठता है—गागर मे सागर ! लघु मे विराट् ! अल्प मे अनन्त !

गाने का मूड :

आम की टहनियो पर मचल-मचल कर झूमती हुई कोयल मधुर स्वर में गा रही थी.

पास ही एक टहनी पर काक-दंपती बैठे थे. कौवे ने कौवी से कहा —"तुम भी एक गाना सुनाओ"

त्यौरियां चढ़ाते हुए कौवी ने कहा—"पहले इस बदमाश को भगा दो, जब तक यह रेकती है, मेरे गाने का मूड ही नही बनता."

प्रेम का ऊर्ध्व क्रम ·

पत्नी-प्रेम से ऊँचा पुत्र-प्रेम है.
पुत्र प्रेम से बढकर भ्रातृ-प्रेम है
भ्रातृ-प्रेम से श्रेष्ठ मातृ-प्रेम है.
मातृ प्रेम से भी श्रेष्ठतम प्रभु-प्रेम है,

क्षण का महत्व :

भगवान महावीर ने कहा था—"**खणं जाणाहि पंडिए** 'विद्वान ! क्षण का महत्व समझो !"

क्षण को नही समझने वाला जीवन को नही समझ सकता !

बूंद को नही समझने वाला, सागर को नही समझ सकता !

रजकण को नही समझने वाला सुमेरु को नही समझ सकता.

क्षण जीवन का मूल है.

बूंद सागर का मूल है.

रजकरण सुमेरु का मूल है.

कवि :

कवि त्रिकालद्रष्टा होता है.

वह अनुभूति की आँख से अतीत का दर्शन करता है, और कल्पना की आँख से भविष्य की छवि निहारता है. और फिर वर्तमान के चित्रपट पर शब्दो के रग मे अतीत एव भविष्य को एक साथ उतार कर प्रस्तुत कर देता है.

कवि की सूक्ष्म कल्पना अन्तर्भेदो होतो है.

वह भाव जगत के आन्तरिक सौन्दर्य को कल्पना की नोक से गुदगुदा कर अभिव्यक्ति देता है,

अनुभूति और अभिव्यक्ति का स्वामी होता है कवि ।

निराशा के समय :

मेरा मन जब-जब निराश के कुहरे से ढकने लगा, तब-तब मैंने देखा—मिट्टी की विशाल परतो के नीचे दबा नन्हा-सा बीज निरन्तर सघर्ष करता हुआ अपने व्यक्तित्व को उभार रहा है.

मेरा मन जव-जव कुठा से ग्रस्त होने लगा, तब तब मैंने देखा—तिमिर के सघन साम्राज्य के बीच एक छोटा-सा ज्योति स्फुलिंग स्वाभिमान के साथ चमक रहा है.

मेरा मन जव-जव भय से आक्रांत होने लगा तब-तव मैंने देखा—काली कजरारी मेघ घटाओ के वीच एक लघु विद्युत रेखा निर्भयता के साथ दमक-दमक रही है.

शिक्षा का उद्देश्य

एक विद्यार्थी से पूछा—"शिक्षा का उद्देश्य क्या है ?"

"उच्च श्रेणी से पास हो जाना !"—उत्तर मिला.

एक शिक्षक से पूछा - "शिक्षा का उद्देश्य क्या है ?"

"अच्छी सरकारी नौकरी प्राप्त करना"—जवाव आया।

एक लेखक से पूछा— 'शिक्षा का उद्देश्य क्या है ?"

विदेशी साहित्य का देशी भाषा में अनुवाद करना—"उत्तर दिया"

एक विचारक से पूछा—"शिक्षा का उद्देश्य क्या है ?"

"मनुष्य को हर कार्य में कुशल वना देना."

एक सत से पूछा—"शिक्षा का उद्देश्य क्या है ?"

"आत्मा के सुप्त तेजस् को जीवन मे व्यक्त कर देना."

मैं सोचता रहा,—"हम शिक्षा के किस उद्देश्य मे सफल हो रहे हैं ?"

साहित्य जीवन का स्वर :

साहित्य और कला—वह स्वर्ण फूल नही है, जिसे कलाकारो की प्रदर्शनी मे टाग कर केवल दर्शको का मन बहलाया जाय.

वह—जीवन का अन्तर्भेदी स्वर है जो मूर्च्छित मानव-चेतना को जागृत कर के आशा, आत्मविश्वास और साहस की स्फुरणा जगाए देता है।

आज का साहित्य .

आज साहित्य के नाम पर विकार, सघर्ष एव द्वेष को उत्तेजित

करने वाली कृतियो की चर्चा सुनता हूँ तो लगता है आज का साहित्य उस मधुमक्खी की तरह बन गया है, जिस के मुँह में मधु की एक बूद है, और पूछ मे तीखा डक. मधु की एक बूंद के आस्वाद के बाद जब तीखा डक लगता है, तो आदमी भीतर ही-भीतर तिलमिला कर रह जाता है.

फूल ने उत्तर दिया

सौरभ से मदमाते फूल को देखकर पत्थर ने ईर्ष्यावश कहा "मैं तुम्हे कुचल डालूगा."

फूल ने मुस्कराकर जवाब दिया—"बन्धु ! मेरी सौरभ को दुनिया में फैलाने का मौका देकर तुम मुझ पर अनन्त उपकार करोगे।"

समय पर

उचित समय पर कहा हुआ शब्द वैसा ही सुन्दर लगता है, जैसा कि सोने की अँगूठी मे जुडा हुआ नगीना !

अयोग्य समय पर बोला हुआ सुन्दर शब्द भी वैसा ही निरर्थक प्रतीत होता है जैसा कि दिन मे दीपक !

अविचल मनोदशा

भगवान महावीर को चड कौशिक जैसे भयानक नाग ने डसा, पर उनपर उसका कोई असर नही हुआ. यह साधक की अविचल मनोदशा का प्रतीक है कि विकारो का नाग डसने पर भी उसके मन पर उसका कोई प्रभाव नही पडता.

अपशब्द

वन्दूक से छूटी हुई गोली, और धनुष से छूटा हुआ तीर जिस प्रकार

वापस लौट नही सकता, उसी प्रकार मुँह से निकला हुआ शब्द वापस नही आ सकता.

बुरा शब्द बोलकर भले ही क्षमा मांग ले, भूल स्वीकार कर ले, पर क्या इससे शब्द तरंगो का जो व्यक्तित्व वायुमंडल में बन गया है उसे मिटाया जा सकता है ? क्षमा मागने से भी 'अपशब्द' का अस्तित्व नही मिटता.

बोलते समय सदा सावधान रहो कि मुँह से ऐसा शब्द न निकले, जिसके लिए बाद में पछताना पड़े, क्षमा मागनी पडे !

भूख और भोजन :

भूख नही है, तो भोजन का समय भी असमय है.

भूख नही है, तो सुपाच्य भोजन भी दुष्पाच्य है

भूख नही है, तो मधुर मिष्टान्न भी फीका है

प्रसिद्ध नीतिविद् आचार्य सोमचन्द्र से पूछा गया, कि भोजन का समय कौन-सा उचित है ? तो जवाब दिया—"**बुभुक्षा कालो भोजन कालः:**"—भूख का समय ही भोजन का समय है

आयुर्वेद के प्रकांड पडित आत्रेय से जब पूछा कि भोजन कब करना चाहिए. तो अपने एक लाख श्लोकों के ग्रन्थ का सार एक पद्य में बताते हुए कहा—पहला भोजन पच जाने पर—"**जीर्णे भोजन-मात्रेय .**"

श्रोताओ की समस्या :

आज के श्रोताओ की समस्या है कि कोई कुछ सुनना नही चाहते, सुनते है तो समझना नही चाहते, और समझते भी है तो उसे मन मे उतारना नही चाहते.

पुल नही वाध ·

मैंने देखा है कि—आज के श्रोता पुल वनते जा रहे है वक्ताओ के भाषण की धुआधार वर्षा होती है, विचारो का पानी वहता-वहता आता है और श्रोताओ रूपी पुल के नीचे से वहकर आगे निकल जाता है.

मेरे श्रोताओ ! पुल नही, वाध वनो ! अपनी क्षमता के अनुसार विचारो के पानी को मन की परिधि मे रोको, और जीवन भूमि को शस्यश्यामला बनाने के लिए उसका धीरे-धीरे उपयोग करो.

बुद्धिमानी की निशानी :

पढने से अधिक चिंतन करना, बोलने से अधिक सुनना और कहने से अधिक करना—बुद्धिमानी की निशानी है

चलने से पहले देखना, बोलने से पहले विचारना, और करने से पहले समझना समझदारी का चिन्ह है.

पकने पर कडवा क्यो :

कभी-कभी सोचता हूँ— फल पकने पर मधुर होता है, अन्न पकने पर स्वादिष्ट होता है, घडा पकने पर उपयोगी बनता है, फिर मनुष्य ने ही क्या अपराध किया है कि वह पकने पर कडवा, नीरस और अनुपयोगी वनकर रह जाता है ?

महापुरुष का सहवास :

पुस्तकीय ज्ञान एव महापुरुष के सहवास मे बडा अन्तर है.

पुस्तक से जानकारी मिल सकती है, ज्ञान नही, जिज्ञासा बढ सकती है, समाधान नही. विचार मिल सकता है, सदाचार नही.

ज्ञान, सदाचार और समाधान पाने के लिए महापुरुष की सगति आवश्यक है.

अधा :

आँखो के अंधे ने ससार का उतना नुक्सान नही किया, जितना हृदय के अधो ने किया है

आँख का अंधा अधिक से अधिक स्वय को हानि पहुँचा सकता है. किन्तु हृदय का अधा करोड़ों-करोड़ो मनुष्यो की मौत का कारण वन सकता है

दुर्योधन का पिता धृतराष्ट्र केवल आँख का अधा था किन्तु फिर भी उसने कुल की रक्षा का प्रयत्न किया, परन्तु हृदय का अंधा दुर्योधन करोडो माताओ की गोद सूनी कर गया

नकलची .

मनुष्य सबसे वडा नकलची है, वह नकल करके जीता है. उसने पक्षियों की तरह आकाश मे उडना सीखा, मछलियो की तरह पानी मे तैरना सीखा, घोड़े की तरह जमीन पर दौड़ना सीखा। पर खेद है कि मनुष्य ने मनुष्य की तरह जीना नही सीखा

मनुष्य दूसरो की नकल करना चाहता है,किंतु उसने अपनी असलियत को कभी नजदीक से देखने का प्रयत्न नही किया

क्या यही जीवन है ?

क्या मनुष्य के जीवन की आज यही परिभाषा हो गई है कि वह रोता हुआ पैदा होता है, शिकायत करता हुआ जीता है, और निराशा के कुहरे से दबकर अतिम सास तोड देता है ?

शिक्षा का उद्देश्य :

शिक्षा का एक ही उद्देश्य है—व्यक्ति के अन्त.करण में सुप्त बोध को जागृत करके, उसे अपना मार्ग खुद चुनने की योग्यता प्रदान करना.

खरे : खारे :

'खरे' बनिए, मगर "खारे" नही !
'भले' बनिए, मगर "भोले" नही !
'चतुर' बनिए, मगर "चालाक" नही !
'मीठे' बनिए, मगर "चापलूस" नही !

दूसरो के सितारे :

मैंने एक ज्योतिषी से पूछा—तुम दूसरो के सितारे देखने की अपेक्षा अपने ही सितारे क्यो नही देख लेते ?

मैंने तो देख लिया कि—दूसरो के सितारे देखते-देखते मेरे सितारे कमजोर पड गए हैं—ज्योतिषी ने उत्तर दिया.

बुराई की सफाई :

मैंने देखा है—सड़क पर सफाई करने वाला एक मेहतर कूडे-कचरे को अपने घर मे नही रखता, बल्कि बाहर दूर डालता है.

मैंने अनुभव किया है- समाज सुधार की बाते करने वाले दूसरो की बुराई की चर्चा करके उसे अपने ही मन मे डालते जाते हैं.

दुर्जन : सज्जन :

गगा जल मे मिलकर गन्दा जल भी पवित्र बन जाता है. तो क्या एक सज्जन के साथ रहकर दुर्जन भी सज्जन नही बन सकता ?

मुख : हृदय :

हसता हुआ सुन्दर मुख मनुष्य का आधा काम पूरा कर देता है, यदि हृदय भी उदार और निर्मल है तो फिर काम पूरा होने में कोई सन्देह ही नही !

नम्रता का अर्थ :

नम्रता क्या है ?

सिर्फ झुक जाना ही नम्रता नही है. नम्रता के तीन लक्षण है—

१. कड़वी बात का मीठा उत्तर देना.

२. क्रोध के समय चुप रहना.

३. दण्ड देते समय हृदय को कोमल रखना !

प्रतिज्ञा :

प्रतिज्ञा—मन की दुर्बलता का प्रतिकार है. जो प्रतिज्ञा लेने से कतरा-कर उसे दुर्बलता बताता है वह वस्तुत: अपनी दुर्बलता को ही उघाड़ कर सब के समक्ष व्यक्त करता है.

प्रार्थना :

प्रार्थना मन की खुराक है. मैं जब-जब प्रार्थना करता हूँ तो मन अनिर्वचनीय आनन्द से पुलक उठता है और शरीर मे जैसे नई स्फूर्ति लहरा उठती है. लगता है—प्रार्थना मन, मस्तिष्क और शरीर की एक खुराक है.

प्रश्न : उत्तर :

एक कवि ने पृथ्वी मे छिपे स्वर्ण भंडार को देखकर प्रश्न किया—

प्रकृति ! तुमने स्वर्ण को पृथ्वी के पेट मे छुपाकर क्यो रखा ?
और सौरभ से मदमाते फूलो को निहार कर पुनः प्रश्न किया—इन मधु-मोहक फूलो को उपवन की खुली डालियो पर क्यो खिला दिया ?
और फिर कवि के अन्त स्फूर्त कवित्व ने ही इसका उत्तर दिया—स्वर्ण की मोहकता मनुष्य के दुःख का कारण है इसलिए !
फूलो की मोहकता मनुष्य के आनन्द का कारण है—इसलिए !

आत्मा और देह :

फूल और काटा एक डाल पर खिलते है, पर दोनो एक नही हो सकते !
म्यान और तलवार एक हाथ में रहती है, किन्तु दोनो मे कोई समानता नही !
देह और आत्मा साथ-साथ रहते रहे है किन्तु दोनो मे कोई अभिन्नता नही.

धर्म की परीक्षा

धर्म का पालन धैर्य से होता है, और परीक्षा कष्ट मे !

हृदय की परीक्षा :

छोटी-छोटी बातो और छोटे-छोटे व्यवहारो से मनुष्य के विराट् चरित्र एवं विशाल हृदय की परीक्षा होती है.

मल्य

वाष्प का मूल्य है—उसे नियन्त्रित करने मे !
भावना का मूल्य है—उसे केन्द्रित करने में.
नियन्त्रित वाष्प अनेक शक्तियाँ पैदा करती है, केन्द्रित भावना अनेक चमत्कारो को जन्म देती है.

प्रायश्चित्त :

मन विना लगाम का घोड़ा है, जव तव इधर-उधर भटक जाता है, भूल व अपराध कर बैठता है, लेकिन भूल और अपराध पर विजय वह पाता है जो उसे निर्भीकता पूर्वक स्वीकार करके भविष्य में न करने का दृढ सकल्प कर लेता है.

मैंने गाधोजो का जोवन प्रसंग पढा—एक बार वुरो सगति मे पड़कर किसो से कर्ज लिया, कर्जदार जव तग करने लगा तो उन्होने घर से एक तोला सोना चुराकर उसको दे दिया. किन्तु यह दुष्कृत्य उनके मन को जलाने लगा, पिताजी से कहने का साहस भी नही हुआ आखिर एक पत्र लिखकर उन्होने अपने अपराध पर पश्चात्ताप व्यक्त करके भविष्य में पुन न करने का दृढ सकल्प व्यक्त किया.

उदार पिता ने पुत्र के अपराध पर यह कहकर क्षमा कर दिया कि "तुमने अपने आप ही इसका प्रायश्चित कर लिया, यह अच्छा है" अपराध के प्रति सच्चा पश्चात्ताप और आत्मग्लानि ही उसका सही प्रायश्चित्त है

श्रोता और भीड .

जनता की भीड तो मात्र एक प्रदर्शन है, वह सुनने को नही, देखने को उत्सुक रहती है, सुनने वाले और सुनकर समझने वाले श्रोता तो वहुत ही कम होते है

एक बार रस्किन के भाषण का प्रोग्राम था. उसे देखने के लिए हजारो की भीड़ उमड पडी सभागृह खचाखच भरा था और बाहर भी जनता कुलबुला रही थी । यह भीड़ देखकर सूचना दी गई कि

रस्किन का स्वास्थ्य ठीक नही है, अत. भाषण आज नही, कल होगा !
दूसरे दिन आधी जनता उपस्थित हुई उस दिन भी अस्वस्थता की सूचना देकर भीड़ को निराश लौटा दिया गया

तीसरे दिन सभागृह में केवल सौ आदमी थे, किन्तु उन्हे भी वही पुरानी बात कहकर भाषण सुनने के लिए अगले दिन का कह दिया गया.

चौथे दिन सभागृह के मंच पर केवल आठ-दस व्यक्ति उपस्थित थे. रस्किन ने सभागृह में प्रवेश किया और भाषण प्रारम्भ करते हुए कहा— मित्रो ! मैं तुम्हे ही अपना भाषण सुनाना चाहता हूँ, तुम्ही सच्चे श्रोता हो, बाकी तो भीड़ थी !

आज्ञा पालन :

आज्ञा देना सरल है, आज्ञा पालन करना कठिन !
सत्य का उपदेश करना सरल है, सत्य की साधना करना कठिन !

योग और आसन पर भाषण देना सरल है, योग-आसन का अभ्यास करना कठिन है.

मैंने देखा—आज्ञा पालन करने वाला सबसे योग्य शासक बन सकता है, सत्य की साधना करने वाला सबसे बडा सत बन सकता है और योगाभ्यास करने वाला सबसे बडा योगी बन सकता है.

बुद्धिमान : मूर्ख :

अधिक प्रश्न करना बुद्धिमानी की नही, मूर्खता की निशानी है
मूर्ख घण्टे भर में इतने प्रश्न कर सकता है कि बुद्धिमान पाँच वर्ष मे भी उनका उत्तर नही दे सकता

ऋण :

ऋण दो प्रकार के है—

एक धन का ऋण, दूसरा कर्मों का ऋण.

पहला ऋण-पिता का पुत्र चुका सकता है, भाई का भाई चुका सकता है, किन्तु दूसरा ऋण स्वयं को ही चुकाना पड़ता है—कोई भी बंधु इसमें भाई चारा नही दिखा सकता—**न बंधवा बंधवयं उवेंति.**

परामर्श: पराक्रम :

इस संसार में परामर्श देने वाले बहुत हैं, किन्तु पराक्रम दिखाने वाले कितने है ?
इस संसार में आश्वासन देने वाले बहुत है किन्तु आशापूर्ण करने वाले कितने है ?
इस ससार मे बात बनाने वाले बहुत है किन्तु बात को निभाने वाले कितने है ?

दृष्टि का दोष :

मनुष्य की दृष्टि का सबसे बड़ा दोष यही है कि वह अपने 'कणभर' गुण को 'मनभर' का देखता है, और दूसरो के 'मनभर' गुण को 'कणभर' !

भवन : खण्डहर :

जिस भवन मे मनुष्य का वास नही, वह भवन नही, खण्डहर है.

जिस हृदय में भगवान का वास नही, वह हृदय नही, पत्थर है.

तलवार और कलम :

मानव सृष्टि की नियामक दो शक्तियाँ रही है—तलवार और कलम ! तलवार शिर को दबाकर शासन करती रही है और कलम शिर का नवांकर !

तलवार भय व आतक फैलाकर अपना काम चलाती रही है, और कलम प्रेम और अभय का सदेश देकर सर्वत्र प्रतिष्ठा पाती रही है !

मैत्री के दो रूप :

दुर्जन की मैत्री—दूध-पानी की मैत्री है पानी मिलने से दूध का रस एव गुण क्षीण हो जाता है, उसी प्रकार दुर्जन की सगति से मनुष्य के सद्गुणो का रस क्षीण पड जाता है

सज्जन की मैत्री, दूध-चीनी की मैत्री है. चीनी मिलने से दूध का रस एव गुण भी अधिक हो जाता है, उसी प्रकार सज्जन के सहवास से सद्गुणो मे और अधिक वृद्धि होती है.

जीवन की दौड .

जीवन की दौड़ मे विजय उसे मिलती है, जो धैर्यपूर्वक दौडता रहता है जो बीच में हार कर बैठ गया उसका दौडना बेकार गया

विज्ञान की दो दुकाने ·

विज्ञान ने आज दो दुकाने खोल रखी है, एक "रिटेल सेल' की दुकान है, दूसरी 'हॉलसेल' की

रिटेल'सेल' की दुकान पर वह एक एक मनुष्य को, जीवन की सुख-सुविधाएँ, स्वास्थ्य एव मनोरजन की सामग्री दे रहा है.

किन्तु 'हौलसेल' की दुकान पर रोग, चिन्ता ओर विनाश का थोक माल धडल्ले से बेचे जा रहा है.

प्रगति दुर्गति .

गति में यदि आँखे खुली हैं तो वह प्रगति है, अन्यथा दुर्गति !

क्रिया मे यदि ज्ञान है, तो वह मुक्ति है, अन्यथा वन्धन !

वाणी मे यदि विवेक है, तो वह सुवचन है, अन्यथा दुर्वचन ?

अपना अपना भाग्य :

झूमती हुई कोपल ने पवन से कहा—वहन ! तुम कितनी अच्छी हो ! मुझे प्रतिदिन दुलार कर प्यार से झुला जाती हो !

टूट कर गिरते हुए पीले पत्ते ने कहा - सत्यानाश हो तेरा ! मेरा तो घर ही उजाड डाला !

मस्ती से चलते हुए पवन ने कहा—मेरा काम तो सिर्फ गति करना है जन्म और मृत्यु, हर्ष और विषाद सव को अपने-अपने भाग्य से मिलता है

समय पर

बीज जव अंकुर वना, तो पवन ने उसको पुचकार कर प्यार से झुला दिया ! जल ने उसको सहला-सहला कर नव चेतना दी

अकुर जव वृक्ष बना, तो उसी पवन ने एक दिन बडी निर्ममता के साथ झकझोर डाला, और उसी जल ने प्रवाह बनकर उसकी जडे उखाड कर फेक दी !

मैंने देखा— प्यार दुलार करने वाले मित्र भी समय आने पर किस प्रकार विध्वसक बन जाते है

गहरा और छिछला :

जड़े जितनी गहरी होगी, वृक्ष उतना ही विशाल होगा

नदी जितनी गहरी होगी, धारा उतनी ही निर्मल होगी.

विचार जितने गहरे होगे, जीवन उतना ही विराट् वनेगा

क्षुद्र लताएं शीघ्र ही मुरझा जाती है.

छिछली नदी शीघ्र ही सूख जाती है.

छिछले विचार शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं.

वह क्या है ?

वह क्या है—जो सागर की तरह-दुष्पूर है ?

वह क्या है—जो आकाश की तरह असीम है ?

वह क्या है—जो मनुष्य को प्रतिक्षण पीडित करती हुई भी अदृश्य है ?

वह है—वासना ।

वह क्या है—जो रगीन होकर भी इन्द्र धनुष—सा अस्थिर है ?

वह क्या है—जो तेजस्वी होकर भी विद्युत्-सा चपल है ?

वह क्या है—जो सघन होकर भी बादल-सा क्षणिक है ?

वह है—जीवन ।

योग्यतानुसार :

प्रकृति का नाम सर्व-रसा है इसके अक्षय खजाने में अनन्त रस भरे पडे है जिसमे जितनी, जैसी योग्यता है, वह उसी अनुपात मे प्रकृति के रस प्राप्त कर लेता है.

मैंने देखा—एक ही खेती की भूमि से ईख मधुर रस प्राप्त करता है तो नीबू आम्लरस !

याचना नही, योग्यता.

याचना नही, योग्यता प्राप्त करो !

योग्यता प्राप्त होने पर सफलता अयाचित ही द्वार पर आकर खड़ी हो जायेगी.

क्या तुमने नही देखा, यदि खिड़की खुली है, तो सूर्य का प्रकाश विना माँगे ही आगन में फैल जाता है, और पवन विना प्रार्थना किए ही झुला जाती है.

तीन सूत्र :

स्नेह, मैत्री और विनय—जीवन को जीतने के तीन सूत्र है.

बालक का हृदय स्नेह से जीता जाता है,.
युवक का हृदय मित्रता से जीता जाता है,
और वृद्ध का हृदय विनय से जीता जाता है.

वह बोलना क्या....?

वह करना क्या, जिसे करके पछताना पडे,
वह चलना क्या, जहा चलकर लौटना पड़े
वह बोलना क्या, जिसे वोलकर क्षमा मागनी पड़े.

महत्वपूर्ण :

खान से पत्थर और कोयले तो धड़ाधड़ निकलते जाते हैं, किन्तु हीरे, पन्ने तो बड़ी खोज के वाद हाथ लगते है.

मस्तिष्क से निरर्थक कल्पनाएं तो तरंगो की भाति उठती रहती है, किन्तु कोई महत्त्वपूर्ण मौलिक कल्पना तो गहरे चिंतन-मनन के वाद ही उभर कर आती है.

समय :

समय धन है !

किसके लिए ?

जो उसके उपयोग का महत्व समझे ।

समय सीढियां है

किसके लिए ?

जो उसके सहारे ऊपर चढना जाने ।

समय उसका है, जो इसे अपना समझे ।

जो समय की अवगणना करता है, समय उसे नष्ट कर डालता है

बुद्धि का सदुपयोग

इसमे कोई सदेह नही कि मनुष्य को बुद्धि और विवेक मिला है, किन्तु इसमे सन्देह है कि उसने उसका सदुपयोग कितना किया है ?
अक्सर मनुष्य सभ्यता का आवरण डालकर जगली व्यवहार करता है और बुद्धिमानी के नाम पर बेवकूफी की गेद उछालता है,

वाणी-वाणी मे अन्तर :

धुआ अगरवत्ती से भी निकलता है, और रसोई की अंगीठी से भी !

अगरबत्ती के धुए से सब का मन प्रसन्न होता है, और अगीठी के धुएं से दम घुटने लगता है

सज्जन भी एक वचन बोलता है, और दुर्जन भी !

सज्जन की वाणी सुनकर सब का मन आल्हादित हो उठता है, और दुर्जन की वाणी से मन मे अकुलाहट पैदा हो जाती है.

प्रशसा-निन्दा .

प्रशसा नीद की तरह मन को सुहाती जरूर है, किन्तु वह आदमी को बेहोश बना देती है

निन्दा दर्द की तरह मन को कचोटती जरूर है, किंतु वह आदमी को सजग बना देती है.

स्याद्वाद :

स्याद्वाद वह यंत्र है, जो भेद एवं आग्रह की खाइयो को पाटकर अभेद एवं अनाग्रह का पुल निर्माण करता है

स्याद्वाद-वह यत्र है, जो सत्य के विभिन्न खण्डो को जोडकर एक अखण्ड सत्य का रूप निर्माण करता है.

वचन की चतुरता :

रबर को अधिक खीचने से वह लम्बा भले हो जाए, किन्तु इससे रबर कमजोर हो जाता है.

बात को अधिक लंबाने से वह बडी भले ही हो जाए, किन्तु इससे बात का प्रभाव कम हो जाता है.

महाकवि हर्ष ने इसीलिए कहा है **"मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता"** संक्षेप मे महत्वपूर्ण बात का कहना ही वचन की चतुरता है.

वड़ा कौन .

बडो की सेवा करने वाले बड़े नही होते, किंतु छोटो की सेवा करने वाले बड़े होते हैं.

बड़े वृक्षो की सेवा करने वाला माली नही होता, किन्तु छोटे-छोटे पौधो की देख-भाल करने वाला ही सच्चा माली होता है.

तपे विना :

तपे विना कोई स्वर्ण निखर नही सकता.
तपे विना कोई घट पक नही सकता

तपे विना कोई कार्यकर्ता चमक नहीं सकता.
तपे विना कोई साधक सिद्ध वन नही सकता

शब्द रवर नही :

शब्द को बहुत सोच-समझ के निकालो वह रवर नही है, जो वढ़ जाने के वाद फिर सिकुड जाये. वह तो कपड़ा है, जो कट जाने के वाद स्वाभाविक रूप में जुड नही पाता.

दु.ख क्या है

विपत्ति वह शक्ति है, जो विकास की नई-नई योजनाओ को जन्म देती है.

दु.ख वह शासक है, जो मनुष्य की उद्दाम इच्छाओ को नियन्त्रित रखता है.

विपत्ति . नई सूझ :

विपत्ति से घबराओ नही, वह तो प्रकृति का वरदान है, जो सुख के अनुसधान की नई सूझ देती है.

यदि बीमारी नही आती, तो औषिध का अनुसधान कौन करता ?
यदि पैर मे काटे नही लगते, तो जूतो का आविष्कार कैसे होता ?

महापुरुष का मन :

मेढक और मछलियाँ उछल-कूद कर छोटी तलैया के जल को गदा कर सकती है, किन्तु महासरोवर के जल को नही.

पूजा सत्कार सामान्य मनुष्य के मन को मलिन बना सकते हैं, किंतु महापुरुषो के मन को नही.

असली. नकली :

रोल्डगोल्ड ने सुवर्ण को नकल की.
कल्चर मोती ने असली मोती की नकल की.
इमिटेशन डायमड ने सच्चे हीरे की नकल की.
प्लाष्टिक के फूलो ने असली फूलो की नकल की.
पर क्या सोने की असलियत छिप गई ?
क्या मोती की चमक पहचानी नही गई ?
क्या हीरे का मूल्य कुछ कम हुआ ?
क्या फूलों की क्यारियों का महत्व घट गया ?
नकल चाहे जितनी कुशल एवं सुव्यवस्थित हो,
वह कभी भी असलियत को गिरा नही सकती !

साहस :

साहस, वह रीढ की हड्डी है, जिसके अभाव में प्राणी जमीन पर रेगता रहता है. यदि उठकर दौडना है, तो साहस को कभी टूटने मत दो.

छत्ते की पद्धति .

मैंने देखा—घर में छत्ता सिमटा हुआ एक ओर पडा रहता है, किंतु जब धूप और पानी से मुकाबला करना होता है तो तन कर खड़ा हो जाता है.

मैंने समझा—जीवन जीने की यही पद्धति है. सुख मे मनुष्य चाहे जितना आलस्य मे पड़ा रहे, किन्तु जव भय और संकटो से मुकाबला करना होता है, तो छत्ते की तरह तन कर खडा हो जाने मे ही उसकी सार्थकता है

'भूत' का अनुयायी

कहते है—'भूत' के पैर पीछे की ओर मुडे रहते है, और मनुष्य के पैर आगे की ओर

जो व्यक्ति केवल अतीत की बीती बातो के आधार पर ही चलते है, उसी आधार पर सोचते-विचारते है, वे 'भूत' के अनुयायी है, भूतवादी है

जो व्यक्ति भविष्य को योजना के अनुसार वर्तमान मे आचरण करता हुआ चलता है, वह वर्तमान का स्वामी मानव है.

समय :

समय एक कपडा है, उसे सफलता की कैंची से काट कर सुन्दर परिधान भी बनाया जा सकता है, और असफलता की कैंची से काट-काट कर रद्दी कतरन भी

समय एक सादा कागज है, उस पर सलफता की कलम से अमर साहित्य भी लिखा जा सकता है, और असफलता की कलम चलाकर गदी गालियाँ भी

द्विजन्मा विचार :

सत्पुरुप के विचार द्विजन्मा होते है. वे पहले मस्तिष्क मे जन्म लेते हैं, फिर हृदय की गहराई मे उतर कर सस्कारित होते है और फिर वाणी द्वारा अभिव्यक्ति पाते है.

असत्पुरुष के विचार जब कभी मस्तिष्क में जन्म लेते है, तुरन्त वाणी द्वारा व्यक्त हो जाते हैं.

मूर्खता :

काल को ढाल बनाकर अपनी बुरी आदतो को छिपाने का प्रयत्न करना, न केवल कायरता है, बल्कि पहले दर्जे की मूर्खता भी है.

दृष्टिकोण का अन्तर :

समुद्र ने नाव से कहा—"नाव ! तुम कितनी धोखेबाज हो. मेरे घर में, मेरे शत्रुओ का सहारा बनकर उन्हे पार लगाती हो, मेरी छाती को रोदकर शत्रु की रक्षा करने में जुटती हो, ऐसी धोखेबाज कन्या मैंने कभी नही देखी"

नाव ने विनीत स्वर में कहा—"सिधुराज ! यह तो दृष्टिकोण का अन्तर है मैं तो आपके द्वार पर आये अतिथियो का स्वागत करती हूँ, उन्हे आपके घर की शोभा दिखाकर बाहर द्वार तक सकुशल पहुँचाती हूँ. धोखा नही, अतिथि सेवा करती हूँ."

दृष्टि :

दुर्जन की दृष्टि गदगी पर भिनभिनाने वाली मक्खी की तरह सदा बुराई एव अवगुणो पर ही टिकी रहती है.

सज्जन की दृष्टि फूलों का पराग पीने वाली मधुमक्खी की तरह सदा सद्‌गुणो का रसपान करने मे मस्त रहती है.

प्रात : और सध्या :

प्रभात कालीन पूर्वांचल की शोभा और संध्या-कालीन पश्चिम-अंचल की रमणीयता मे विशेष अन्तर नही है दोनो की प्राकृतिक स्वर्णिम छटा प्राय: समान है. फिर भी जाने क्यो, प्रभात की लाली

आँखो को भाती है, मन को मोहती है, और सध्या की लाली आँखो मे चुभती हुई मन को कचोटतो है.

शायद् इसीलिए कि प्रभात जीवन का प्रारम्भ है, और संध्या जीवन का अत !

क्रोध · मन की दुर्बलता :

क्रोध, चिडचिड़ापन, गालीगलौज—मानसिक असतुलन का परिणाम है. जव मनुष्य का मन दुर्बल, असतुलित एव कुण्ठाग्रस्त होता है तो वह अपने भीतर की घुटन को कभी क्रोध करके व्यक्त करता है, कभी चिडचिडाकर शाति पाने का प्रयत्न करता है और कभी गाली देकर मन को हल्का करने की चेष्टा करता है.

धोखा देना दुष्टता है :

'धोखे' को समझना चतुरता है, धोखा खाना मूर्खता है, और धोखा देना दुष्टता है.

व्यवहार शुद्धि ·

केवल हृदय को शुद्ध रखना सरलता है, केवल व्यवहार को शुद्ध रखना चतुरता है. हृदय और व्यवहार-दोनो को शुद्ध रखना धार्मिकता है.

क्या भूलें, क्या याद करे ?

एक प्रश्न है—जीवन मे क्या याद रखना चाहिए, और क्या भूल जाना चाहिए ?

उत्तर है—जिन स्मृतियो से मन सदा प्रफुल्लित, उत्साहित एवं तेजस्वी वना रहे उन्हे वार-वार दुहराना, याद करना चाहिए, और

जिन वीती बातो को याद करने से मन मे निराशा, आवेग एव कुण्ठा जाग्रत होती है उन्हे भुला देना चाहिए.

दूसरो का गज ·

जब हम अपने को दूसरो के गज से नापने लगते है तो समस्या उलझ जाती है.

और जब हम दूसरो को अपने गज से नापना चाहते है तो समस्या और विषम वन जाती है.

समाधान यही है कि—दूसरों को दूसरो के गज से नापा जाए और अपने को अपने गज से !

अपनी टोपी दूसरे के शिर पर रखने का प्रयत्न नही कीजिए और नही दूसरे की टोपी अपने शिर पर ! सलीका यही है कि हर आदमी अपनी टोपी अपने शिर पर रखे.

सफलता मे धैर्य :

कार्य प्रारम्भ करते ही उसकी सफलता चाहना, अधीरता एव व्यावहारिक अकुशलता है.

क्या आप नही देखते कि बीज डालने के कितने वर्षो पश्चात् वृक्ष फूल व फल देने मे समर्थ होता है ?

क्या आप नही जानते कि—जन्म लेने के कितने समय पश्चात् वच्चा वोलने लगता है, और कितने वर्ष पश्चात् वह आपकी भांति समझने लगता है ?

वूढा और युवक :

जिसके मन में निराशा की काली घटा गहरा रही है, वह बूढा हो गया है.

और जिसके मन मे उत्साह एव नवसर्जन की उमग विजली की तरह चमक रही है, वह हमेशा ही युवक है।

समय की मलहम :

शोक के गहरे घाव को भरने की शक्ति समय की मलहम के अतिरिक्त अन्य किसी मे नही है हां, सान्त्वना की पट्टी उसकी वेदना को हल्की जरूर कर सकती है, किंतु भर नही सकती.

जीवित पौध :

जीवित पौधो को पानी सीचने से वे अभिवृद्धि को प्राप्त होकर फलवान बन सकते है, किन्तु निर्जीव पौधो को चाहे जितना पानी सीचो, वह क्या बढेगा ?

जिस मनुष्य मे जिज्ञासा है, उसको ज्ञान् व उपदेश का जल मिलने पर बुद्धि का वृक्ष निरन्तर वृद्धि पाता रहता है, किन्तु जिसमे आग्रह की जडता है, उसे कितना ही उपदेश दो, क्या लाभ ?

विपत्ति मित्र है .

विपत्ति शत्रु नही, मित्र है, वह मनुष्य को विवेक की आख देती है जिससे वह अपने-पराए को परख सकता है, समय पर नई सूझ पैदा करके जीवन को चमका सकता है.

विपत्ति के लिए एक लेखक ने लिखा है—"विपत्ति हीरे की धूल है, जिससे ईश्वर अपने रत्नो को चमकाता है"

अभिमान :

जो विद्वान होकर अभिमान करता है वह वस्तुत. विद्वान नही, अज्ञानी है.

विद्वत्ता सवसे पहले मनुष्य को अपने अज्ञान का वोध कराती है. और यह अनुभव देती है कि ज्ञान अनन्त है, जिसे ज्ञान की अनन्तता का वोध होने पर भी अपने तुच्छ ज्ञान का अहकार होता है उससे वढ़कर अज्ञानी और कौन हो सकता है ?

तीन दुर्लभ वाते :

वडा कौन ?

देवता या मानव !

एक भाई वहुत वार पूछा करते है. "महाराज कोई ऐसा मंत्र वतलाइए कि देवता प्रसन्न हो जाये, और मालामाल कर दे. सव दुःख दूर हो जाये."

मैंने कहा—वंधु ! जिन देवताओ की कृपा से तुम सव दु.ख दूर करना चाहते हो, वे देवता भी स्वयं दुखी हैं, यह कैसा व्यामोह है कि मनुष्य देवता को प्रसन्न करना चाहता है और देवता मनुष्य के चरणो मे मस्तक झुकाने को आते है.

तुम्हे याद है, भगवान महावीर से एक वार गणधर गौतम ने पूछा था—"भगवन् ! ये देवता जिनके पास अपार स्वर्गीय वैभव है, सुख के अगणित साधन हैं, जो चाहे वह प्राप्त कर सकते हैं, इनके लिए तो कुछ दुर्लभ नही होगा इस ससार मे ?"

भगवान ने कहा—'गौतम ! ये स्वर्ग के देवता और देवराज भी तीन वातो की निरंतर कामना करते रहते है, किंतु सभी कोई प्राप्त नही कर सकते ?"

"भगवन् ! ऐसी दुर्लभ वे तीन वाते क्या हैं ?" गणधर गौतम ने पूछा !

"गौतम ! वे तीन दुर्लभ बाते हैं—आर्य क्षेत्र मे मनुष्य जन्म ! सत्कुल मे अवतरण और सद्धर्म का श्रवण !"

मैंने कहा—बधु ! जो बाते देवताओ को भी दुर्लभ है वे आपको प्राप्त हुई है, किंतु दुर्भाग्य है कि आप उनका मूल्य नही समझ कर अपने शकर को ककर समझ रहे है, और दसरो के ककर को भी शकर ! इसी बात को एक शायर ने कहा है—

फरिश्ते से बेहतर है इन्सान बनना ।
मगर इसमे पड़ती है मेहनत जियादा ॥

भगवान के दर्शन .

भक्त ने कहा—भगवन् ! मुझे आपके दर्शन करवा दीजिए !

भगवान ने कहा—आपे को मार कर देख, तेरे भीतर ही भगवान के दर्शन हो जायेगे !

प्रतिमा और पुरुष ! :

एक प्रश्न उठा—प्रतिमा बडी, या पुरुष !

प्रतिमा ने कहा—पुरुप मे विकार आ सकते है मैं अविकारी हूँ, इसलिए मैं बडी हूँ !

पुरुप ने कहा—तुम्हारी अविकारता का क्या महत्व ? जिसमे चैतन्य ही नही, उसकी अविकारता का महत्व क्या है ? जिस पुरुष ने तम्हारा निर्माण किया और जिसमे विकारो पर विजय प्राप्त करने की योग्यता है, वही वस्तुतः बडा है !

प्रतिमा मौन थी, पुरुष शात !

सब का मेल

ताले ने कहा—मैं न होता तो चाबी का क्या महत्व ?

चाबी ने कहा – मैं न होती तो ताले की क्या उपयोगिता ?

कपाट ने कहा--यदि मैं न होता तो तुम दोनो का उपयोग क्या होता ?

विवाद को समाप्त करते हुए मनुष्य ने कहा—मित्रो ! विवाद न करो, तुम सब की उपयोगिता तभी है जब मनुष्य उनका उपयोग करे ! सब के मिलने पर ही तुम्हारी उपयोगिता है.

ऊंच या नीच ;

ऊचे रहन-सहन, और ऊचे बनाव-ठनाव से कोई ऊचा नही होता। वस्तुतः ऊची करनी से ही मनुष्य ऊचा कहलाता है.

संत तुलसीदास जी ने कहा है—

ऊंच निवास, नीच करतूती।
देखि न सर्काहं पराई विभूती ।।

ऐसे व्यक्ति कभी ऊंचे नही कहला सकते। यही बात भगवान महावीर ने कही थी—

कुछ व्यक्ति आर्य जैसा प्रदर्शन करके आर्य (श्रेष्ठ) कहलाना चाहते है, किंतु उनके विचार व्यवहार अनार्य (नीच) जैसे ही रहते है—
"**अज्जेणामेगे अणज्जभावे**"—स्थानांग ४

भावना का शंखिया :

भावना शखिया है, वह मनुष्य को मार भी सकती है. और तार भी सकती है, जैसे कि अशुद्ध शखिया मनुष्य को मार देता है. जब कि शोधन किया हुआ शखिया औषधि का काम करता है

स्वार्थ का घड़ा :

अंग्रेजी कहावत है—स्वार्थ एक फूटे घड़े के समान है, जिसमे सागर के सागर उड़ेल देने पर भी वह रीता का रीता ही रहता है।"—

Self love is a pot without any bottom you might pour all the great lakes into it but never fill it up"

वस्तुतः स्वार्थी मनुष्य का मन कभी भी भर नही सकता. जितना मिलेगा उतना ही उसका स्वार्थ विस्तार खाता जायेगा, और मन सदा रिक्तता का अनुभव करता रहेगा.

सघीय महत्ता :

एक दिन दूध ने बर्तन मे उफनते हुए कहा—अहा ! मेरी तुलना करने वाला ससार मे कौन है ? मैं अमृत हू—"अमृत क्षीर भोजनम्." दही ने कहा—भैय्या इतराओ नही ! गुणो में और माधुर्य में मैं तुमसे भी अधिक हूँ पता है, मधुरता मे मेरी प्रथम गणना होती है—"दधि मधुरम्"

घृत ने स्निग्ध वाणी मे कहा—तुम दोनो शेखीबाज़ हो, तत्त्व तो मुझ मे ही है—क्या मेरी महिमा सुनी नही—"आयु र्घृतम्."

पास में पडी छाछ ने बुलबुले फैलाकर कहा—बंधुओ ! बहन को भूल मत जाओ. तुम सबसे अधिक जनप्रिय तो मैं ही हूँ. जिन्हे न दूध मिलता है न दही और शुद्ध घृत तो नसीब ही कहां. उनको नवजीवन देने वाली मैं ही हूँ इसीलिए ऋषियो ने कहा है. तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्. चारो का विवाद जब उग्र हुआ तो रंभाती हुई गौमाता ने कहा—मेरी संतान होकर यो झगडती हो, बडी शर्म की बात है ! क्या ही अच्छा हो, तुम अपनी व्यक्तिगत महत्ता की फिराक में न पडकर 'गोरस' की सघीय महत्ता का मान करती ! यदि 'गोरस' की महत्ता है तो तुम सबकी महत्ता अपने आप हो जायेगी.

★